एका डॉक्टरला भेटलेली
खुमासदार माणसं

फादर टेरेसा

आणि इतर वल्ली

डॉ. शंतनू अभ्यंकर

Table of Contents

फादर टेरेसा
भूलेश्वर, बेशक, हमारे एनेस्थेटिस्ट मित्र हैं।
'प्रसु' का जन्म
चफेकर बंधुओं
सैयद गलाह
मालिक
कुंती
डॉ. चेयला
नाना
चक्रधर
ते मूल
मुझे बार-बार धोखा दिया गया।
बागुलबुवा
कूलियो को आज भी वह बात याद है।

फादर टेरेसा और अन्य संत

डॉक्टरों, मरीजों, उनके रिश्तेदारों और सहकर्मियों का दैनिक जीवन
यह डॉक्टरों, नर्सों और वार्ड बॉय से भरा रहता है। हर दिन
लोगों के जीवन में नए प्रतिरूप
उन्हें सुख-दुख, उतार-चढ़ाव का सामना करना पड़ता है।
एक डॉक्टर, जिसने इस तरह की कुछ कविताएँ लिखी थीं, ने अपने अनुभव साझा किए।
हास्यपूर्ण शैली में चित्रित शब्द चित्र।

समकालीन प्रकाशन

फादर टेरेसा

आणि इतर वल्ली

डॉ. शंतनू अभ्यंकर

फादर टेरेसा

आणि इतर वल्ली

© डॉ. शांतनु अभ्यंकर

फादर टेरेसा और इतर वल्ली

ISBN: 96-6-6 22-6-2

प्रकाशन क्रमांक : ७५

पहला संस्करण: मई 2019

संपादक: गौरी कनेतकर

स्क्रिप्ट संपादन: प्रीति छत्रे। वृषाली जोगलेकर

होम पेज: गिरीश सहस्रबुद्धे

इंटीरियर डिज़ाइन: संदीप सालुंके

मुद्रित सुधार: अशोक देव

प्रकाशक

आनंद अवधानी. सुहास कुलकर्णी

समकालीन प्रकाशन

8, अमित कॉम्प्लेक्स, 474, सदाशिव पेठ,

पुणे ४११ ०३० फोन : ०२०-२४४७०८९६

samakaleen@gmail.com

उन लोगों के लिए जो रंग भरकर कहानियां सुनाते हैं
मैं बड़ों में सबसे छोटा हुआ करता था।
मेरे वो दोनों पिल्ले...
अनन्या और मोहित को ढेर सारा प्यार।

चालाक लोग जो एक डॉक्टर से मिले

फादर टेरेसा

भूलेश्वर, बेशक, हमारे एनेस्थेटिस्ट मित्र हैं।

'प्रसु' का जन्म

चफेकर बंधुओं

सैयद गलाह

मालिक

कुंती

डॉ. चेयला

नाना

चक्रधर

ते मूल

मुझे बार-बार धोखा दिया गया।

बागुलबुवा

कूलियो को आज भी वह बात याद है।

वल्ली से मिलने से पहले...

• मुझे चित्रों का यह संग्रह प्रस्तुत करते हुए बहुत खुशी हो रही है।

एक लेखक के तौर पर, मेरे शुरुआती कदम तो पहले से ही नज़र आने लगे थे। स्कूल में एक बार जब मुझे मेहमानों के सामने 'कविता सुनाने' को कहा गया, तो मेरा एक मशहूर किस्सा है कि मैंने पूछा, 'अपनी सुनाऊं या किसी और की?' ज़ाहिर है, मेहमानों ने तुरंत मुझे यह कहकर टाल दिया कि 'किसी और की सुनाऊं'। 'बारिश में एक दिन' निबंध में मैंने एक 'कहानी' भी लिखी थी, लेकिन समय की कमी के कारण उसे अधूरा ही छोड़ दिया था। बाद में, सर क्लास में आए और पूछा, 'अरे, अंत में क्या हुआ?' कुल मिलाकर, आपने गौर किया ही होगा कि मैं बचपन से ही प्रतिभाशाली रहा हूं! लेकिन मेरी पत्नी और बच्चे इस बात पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते! असल में, 'पापा कहानियां सुनाते हैं' कहने के बजाय, मेरी पत्नी ने उनके नादान दिमाग में यह बिठा दिया है कि 'पापा थप्पड़ मारते हैं'। तो, जैसे ही मैं कहता, 'मैं थप्पड़ बिल्कुल नहीं मारता,' वे सब एक साथ चिल्लाते, 'पापा, आप थप्पड़ बिल्कुल नहीं मारते, ये तो बहुत बड़ा थप्पड़ है!' लेकिन मैंने लिखना जारी रखा, ऐसी गलतियों और चिढ़ाने वाले ताने को दबाते हुए। आखिर, आत्मकथा में भी थोड़ा-बहुत थप्पड़ तो होता ही है!

मैंने इस पुस्तक में लिखी हर बात मरीजों की जांच करके ही लिखी है। मुझे 'कला प्रशिक्षण' के लिए बिल्कुल समय नहीं मिलता। अस्पताल में कंप्यूटर हमेशा मेज पर रहता है और मैं जितना समय मिलता है, टाइप करती रहती हूँ। सुझाए गए बिंदुओं को मैं एक या दो शब्दों में झटपट लिख लेती हूँ। मैं हर बिंदु के लिए एक पैराग्राफ बनाती हूँ और उसे अलग-अलग रंगों से रंग देती हूँ। जब मैं सभी बिंदुओं को अपनी पसंद के अनुसार रंग देती हूँ, तो उन्हें लिखने बैठ जाती हूँ। फिर मैं सोचती हूँ कि कहाँ से शुरू करूँ, कैसे खत्म करूँ, बीच का हिस्सा क्या है, और बिंदुओं को आगे-पीछे करती रहती हूँ। मैं उसमें टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ, गोल निशान आदि जोड़ती रहती हूँ। मैं जो चाहे वो करती हूँ। कंप्यूटर ने इसे बहुत आसान बना दिया है। अगर मैं इसे हाथ से लिखती, तो इसमें तीन गुना ज़्यादा समय लगता। एक बार लिखना, फिर अपनी खराब लिखावट को ठीक करना और पढ़ना, और अंत में फिर से लिखना क्योंकि मैं उसे पढ़ नहीं पा रही थी! अगर मुझे लगता कि यह इतना मुश्किल है, तो मैं इसे लिखती ही नहीं। मेरे जैसी खराब लिखावट वालों के लिए कंप्यूटर वरदान है। कंप्यूटर के बिना, हम हमेशा के लिए बेघर ही रह जाते!

मराठी साहित्य चरित्र चित्रण में समृद्ध है, विशेषकर हास्य चरित्र चित्रण में। यहाँ हास्य एक डॉक्टर द्वारा किया जाता है, और वह भी अधिकतर अस्पताल में। यह एक बड़ा जोखिम है। किसी की बीमारी, किसी के व्यंग्य, किसी की हीन भावना, किसी की निराशा को हास्य का विषय बनाना हास्य का बहुत ही निम्न और घटिया स्तर है। मैंने इससे बहुत सावधानी से परहेज किया है। इसके अलावा, जब डॉक्टरों और हास्य की बात आती है, तो असंवेदनशीलता और सतहीपन का आरोप लगने की संभावना हमेशा बनी रहती है। सच कहूँ तो, डॉक्टर के काम के पीछे हास्य का एक शुद्ध और निर्दोष झरना अदृश्य रूप से बहता है। डॉक्टर इतना तो समझते ही हैं। यह उस झरने की कलकल को शब्दों में उतारने का एक प्रयास है।

ये चरित्र चित्रण निःसंदेह कल्पना की उपज नहीं हैं, लेकिन ये महज संयोग भी नहीं हैं और न ही इन्हें सीधे-सीधे लिखा गया है। चरित्र चित्रण के संदर्भ में, पाठक के मन में यह प्रश्न अवश्य उठता है कि यह सत्य है या असत्य। फिर, जब लोग उनसे मिलते हैं, तो वे पूछते हैं, 'उस व्यक्ति में ऐसी-ऐसी बात क्यों है?' सत्य और असत्य का यह खेल लेखक को अत्यंत प्रसन्न करता है। मेरे अधिकांश चरित्र चित्रण वास्तविक और काल्पनिक व्यक्तियों तथा वास्तविक और काल्पनिक अनुभवों के संयोजन से निर्मित हुए हैं। वास्तव में, इनमें से प्रत्येक पात्र कई दिनों के विकास का एक खेल है। वह पात्र पहले मेरे मन में बसता है, फिर मैं अपने मन में उसके और मित्र जोड़ता हूँ; फिर कभी मैं उन्हें जोड़ता हूँ, कभी उनसे संघर्ष करता हूँ; अचानक, मेरा कोई नया अनुभव उन्हें आकर्षित करता है, फिर वे उस अनुभव के दायरे में आकर जागृत हो जाते हैं।

किताब के एक लेख में, 'फादर टेरेसा' का ज़िक्र हर जगह है। ससून अस्पताल में भी ऐसी ही सिस्टर थीं। लेकिन एक सेवानिवृत्त मैट्रन को कोमल और स्नेही कहे जाने पर बहुत गुस्सा आया। उन्होंने तुरंत गर्व से बताया कि वह बेहद सख्त थीं और इसी से 'फादर टेरेसा' का नाम सामने आया। 'मुझे बार-बार बेवकूफ बनाया गया' कहने वाली दादी मेरी पत्नी डॉ. रूपाली की मरीज़ थीं। 'उन्होंने मुझे बेवकूफ बनाया, लेकिन मालिक तो जा चुका है!' दादी ने बड़ी मुश्किल से अपनी बात कही और यह बताते हुए डॉ. रूपाली का गला भी भर आया। फिर, कुछ दिनों बाद, मैंने इस अनुभव में कुछ और रंग जोड़े और वह दादी कागज़ पर आ गईं। 'शुद्ध इंका कूलियो' से मेरी मुलाकात पेरू में हुई और वहाँ के आदिवासी आंदोलन के साहित्य को पढ़ते हुए वह मेरे मन में बसने लगीं। 'डॉ. छायाला' से मेरी मुलाकात लखनऊ में हुई थी। 'मास्टर' और 'सैय्यद गला' से कॉलेज में मुलाकात हुई थी; जबकि 'नाना' और 'बगुलबुवा' बचपन से ही मेरे मन में बसे हुए थे। 'चक्रधर', 'चाफेकर बंधु', 'प्रसू', 'प्राणसखा', 'कुंती' और 'ते मूल' सभी मेरे अस्पताल में मिले।

इन सब बातों को रंगीन ढंग से बताने का उद्देश्य सतही है। इन चीजों के माध्यम से लोगों के व्यवहार, सोच और आपसी संबंधों का अध्ययन करना मनोरंजक है। मैंने अपने स्टेथोस्कोप से कानों तक आने वाली आवाज़ों और फुसफुसाहटों को प्रस्तुत किया है। कॉलेज में हमें सिखाया जाता है - 'स्टेथोस्कोप का सबसे महत्वपूर्ण भाग कौन सा है?' दोनों ईयरपीस के बीच का भाग डॉक्टर का सिर होता है!' मैं एक डॉक्टर हूँ और मैं दुनिया को उसी नज़रिए से देखता हूँ। मेरे पास कल्पना की उड़ान से अदृश्य सृष्टि को देखने की प्रतिभा नहीं है। मैं इसे अपनी सीमा के रूप में स्वीकार करता हूँ। मैं यह दावा नहीं करता कि मैं इस लेखन से अपना जीवन यापन करता हूँ, न ही मानव मन की गहराइयों का अन्वेषण करता हूँ, इत्यादि। मैं यह दावा भी नहीं करता कि यह लेखन साहित्यिक है या इसके माध्यम से दुनिया को उलट-पुलट कर देगा। इस लेखन का सीमित उद्देश्य बस इतना है कि मैं आपके साथ वह सब साझा करूँ जो मेरे हृदय ने आनंद और खुशी से भरे जीवन में अनुभव किया है।

आज जब यह संग्रह प्रकाशित हो रहा है, तो मुझे संजीवन विद्यालय की अपनी शिक्षिकाओं जानकीताई पंडित और कुसुमताई भुस्कुते का उल्लेख अवश्य करना चाहिए। भले ही मैं अंग्रेजी माध्यम में पढ़ती थी, उन्होंने मुझमें मराठी के प्रति प्रेम जगाया और पढ़ने में मेरा मार्गदर्शन किया। घर में पुस्तकों का समृद्ध संग्रह और पढ़ने की संस्कृति भी बहुत महत्वपूर्ण थी। मेरे बचपन में, जब

टीवी नहीं था, घर के सभी लोग, चाहे जवान हों या बूढ़े, रात में बैठकर कुछ न कुछ पढ़ते थे। पढ़ने का वह जुनून आज भी कम नहीं हुआ है। मेरी भाषा और शैली पढ़ने के इस अनुभव का परिणाम है।

यह लेखन 'अंतर्नाद' के संपादकों भानु काले और 'अनुभव' के संपादकों सुहास कुलकर्णी और गौरी कनेतकर के समय-समय पर दिए गए प्रोत्साहन के कारण ही संभव हो पाया। मैं उनका आभारी हूँ। मेरा मानना है कि लेखक जो कुछ भी लिखता है वह अंतिम और उत्कृष्ट नहीं होता। मेरा मानना है कि संपादकीय नैतिकता आवश्यक और लाभकारी है।

जब 'समाकालीन प्रकाशन' ने मेरी पुस्तक प्रकाशित करने का निर्णय लिया तो मैं अत्यंत प्रसन्न हुआ। एक प्रतिष्ठित और लोकप्रिय संस्था द्वारा पुस्तक प्रकाशित होना मेरे लिए सम्मान की बात है। मैं 'यूनिक फीचर्स' का आरंभ से ही पाठक रहा हूँ और अब मैं स्वयं भी एक लेखक हूँ। यह मेरे लिए अत्यंत संतोषजनक उपलब्धि है। कवर के लिए गिरीश सहस्रबुद्धे और मुद्रण, टाइपसेटिंग, लेआउट और सजावट के लिए 'समाकालीन' की पूरी टीम को हार्दिक धन्यवाद।

- डॉ. शांतनु अभ्यंकर

फादर टेरेसा

उस अस्पताल में दो प्रसिद्ध नर्सें थीं। एक थीं मदर टेरेसा और दूसरे थे फादर टेरेसा। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, मदर टेरेसा कोमल, स्नेही और लोकप्रिय थीं, जबकि फादर टेरेसा क्रूर और दुष्ट थे। मदर टेरेसा छोटी, पतली और कोमल थीं, जबकि फादर टेरेसा लंबे, गठीले और घने बालों वाले थे। उनकी आवाज, व्यवहार और बोलने का तरीका स्त्रीत्वपूर्ण नहीं, बल्कि पुरुषत्वपूर्ण था। वे एक अद्भुत नर्स थीं! इसीलिए उन्हें फादर टेरेसा कहा जाता था।

इनमें से मदर टेरेसा तो बिल्कुल मदर टेरेसा जैसी ही हैं, इसलिए उनकी कहानी में कोई दम नहीं है। भला एक ऐसी सिस्टर की कहानी कैसी हो सकती है जो कोमल, दयालु और अपने मरीजों से प्यार करती हो? इसके बिल्कुल उलट, फादर टेरेसा थीं। उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। वे सिर्फ आंखें घुमाकर ही मरीज को चुप करा देती थीं। वे हम जूनियर रेजिडेंट डॉक्टरों को कुछ ही शब्दों या इशारों से परास्त कर देती थीं। वे अपनी ज़ुबान के बल पर दूसरी सिस्टर्स के बीच अपनी जगह बनाए रखती थीं और सीनियर डॉक्टर उनसे चार फीट की दूरी पर खड़े रहते थे, जैसे कि 'भीख मांगना मना है, लेकिन कुत्ते को दूर रखो'। चूंकि स्थिति ऐसी ही थी, तो यह आश्चर्य की बात नहीं होगी कि स्त्री रोग विभाग में, जहां वे प्रभारी थीं, उनका असीमित अधिकार रहा हो।

लेकिन उनमें खूबियां और कमियां दोनों थीं। जब वह ड्यूटी पर होती थीं, तो ऐसा कभी नहीं होता था कि उन्हें कुछ न कुछ न मिले। उनके साम्राज्य में हर चीज का अपना स्थान होता था और हर चीज अपनी जगह पर होती थी। एक नजर में ही वह समझ जाती थीं कि क्या और कहां गायब है। फिर वह उस चीज को उसकी जगह पर पहुंचाने के लिए पूरी लगन से जुट जाती थीं। अगर

किसी सर्जरी में मदद करनी होती, तो उन्हें मजा आता था। बस हाथ बढ़ाते ही मनचाहा उपकरण उनके हाथ में होता था। वह हर सर्जरी का हर चरण सीखती थीं। वह उनमें अंतर भी जानती थीं। वह यह भी सीखती थीं कि कोई सर्जन यह चरण कैसे करता है, वह चरण कैसे करता है। इसके अलावा, उन्हें सही समय पर आने वाली मुश्किलों से निपटने के कई तरीके पता थे। उनका आदर्श वाक्य था, 'मैं हथियार नहीं उठाऊंगी, मैं तुम्हें चार तरकीबें बताऊंगी'। एक तरफ वह हम जूनियर डॉक्टरों को हमारी जगह दिखाती थीं और सीनियर डॉक्टरों की बहुत मदद करती थीं। उनके हाथ फुर्तीले थे, उनकी हरकतें तेज थीं और साथ ही वह सिर और लेटे हुए डॉक्टरों पर भी नजर रखती थीं। नमकीन घोल निकाल दिया गया है, मरीज़ की आँखें खुली हैं, मरहम लगाएँ, ऑक्सीजन का दबाव कम है, एनेस्थीसिया की एक और खुराक की आवश्यकता होगी, इत्यादि। इसके अलावा, इस बात पर भी ध्यान दिया जाता था कि किस ऑपरेशन थिएटर में कौन सा केस लिया गया है, अगला कौन सा केस लेना है और उसकी तैयारी कैसी है। अगर कोई चीज़ छूट जाती थी, तो वह उसे एक अच्छी गृहिणी की तरह साफ-सफाई से पेश करती थी, ताकि किसी को पता न चले। सब कुछ हो जाने पर, वह बारीक अक्षरों में विस्तृत नोट्स लिखती थी। पिताजी के सुपाठ्य अक्षर हमारे अस्पष्ट अक्षरों के सामने बहुत स्पष्ट दिखाई देते थे। किसी भी नमूने पर कभी कोई नाम नहीं छूटता था, न ही कोई नोट छूटता था।

वह काम में शेरनी जैसी थी। एक बार, मैंने और उसने एक ही रात में लगातार ग्यारह सिजेरियन ऑपरेशन किए। एक भी ऑपरेशन नहीं छूटा। सारे ऑपरेशन खत्म करने के बाद, उसने सब कुछ फिर से साफ किया, धोया, ड्रम लगाया और अगले दस ऑपरेशन के लिए ट्रॉली तैयार की। और यह सब उसने बिना किसी महिला के वहाँ मौजूद हुए किया।

नर्सिंग कॉलेज की छात्राएँ 'लड़कियाँ' कहलाती थीं। उन्हें 'लड़कियाँ' के नाम से जाना जाता था। नर्सिंग के सभी कार्यों में 'लड़कियाँ' ही रीढ़ की हड्डी होती हैं। इन लड़कियों के आते ही सभी सिस्टरें राहत की साँस लेतीं और चुपचाप रजिस्टर भरने, टिफिन खाने, स्वेटर बुनने आदि में लग जातीं। जब इन लड़कियों की छुट्टी होती, तो सिस्टरें सारा काम निपटाने में जी तोड़ मेहनत करतीं। फादर इन लड़कियों के आने-जाने पर कड़ी नज़र रखते थे। एक सख्त नियम था कि वे समय से पहले न जाएँ, बल्कि जाने की तैयारी भी न करें। टिफिन बैग लेना, बाल संवारना आदि मना था। फादर खुद भी इस नियम का पालन करते थे। एक बार फादर ने एक ऐसी ही लड़की को ड्यूटी खत्म होने का इंतज़ार करते हुए पकड़ा। जैसे कोई बल्लेबाज़ रन बनाने की तैयारी करता है, वैसे ही वह वार्ड के कोने पर बैठी किसी मुसीबत के आने का इंतज़ार कर रही थी। उसे देखकर पिता चिंतित होने लगे, "अरे यार, इतनी जल्दी कहाँ जाना है? बारह बजे के बाद रुकने पर क्या तुम्हारा रूप सिंड्रेला की तरह बदल जाता है? क्या बारह बजे के बाद तुम चुड़ैल बन जाती हो?"

यह सुनकर पूरा वार्ड खिलखिलाकर हंस पड़ा। बाद में इस लड़की का नाम सिंड्रेला रखा गया।

फादर टेरेसा ने दूसरों को ऐसे नाम देने में अपना जीवन खो दिया था। 'कुंती' भी ऐसा ही एक नाम था - अविवाहित गर्भवती लड़की के लिए। कुंती फादर टेरेसा की पसंदीदा लड़की थी। ऐसी कई लड़कियां वहां आती थीं क्योंकि वहां सब कुछ मुफ्त था। इसलिए, बहुत से लोग अक्सर फादर टेरेसा को सेवा करने का मौका देते थे! अगर वे समय पर पहुंचतीं, तो उनका गर्भपात हो जाता;

अगर नहीं, तो ऐसी लड़कियों के लिए एक छात्रावास था। अगर वे वहां रुकतीं और बच्चे को जन्म देतीं, तो वे अपने बच्चों को वहां के अनाथालय में दे सकती थीं और घर जा सकती थीं। ऐसी कुंती भी आती थीं कि ये महिला लड़की को उसके उस पाप के बारे में कुछ कह देती थी जिसे पूछने का उसे मौका ही नहीं मिलता था। कुछ वाक्य तो हास्यास्पद होते थे... "तुम ऐसा कैसे कर सकती हो? तुम ऐसे दिन कैसे बिता सकती हो - ओह? क्या तुम सच में ऐसा करती हो?..." उनमें से ज्यादातर टेरेसा के शब्दों से ही गर्भपात हो जाती थीं। हमारी दवा तो बस एक बहाना थी। फादर टेरेसा को ऐसी लड़कियों के लिए जरा भी सहानुभूति नहीं थी। वह उन्हें डांट-फटकार कर, भगा कर, मौखिक और शारीरिक रूप से दंडित करके सारा काम करती थीं। वह उन लड़कियों के पापों की सजा का पूरा भार अपने ऊपर ले लेगी। पहले से ही मुसीबत में फंसी यह अभागी लड़की इन अपमानजनक बातों को सहन नहीं कर पाएगी और एक साथ रोने लगेगी। फिर उसे और भी गुस्सा आएगा। उसे लगेगा कि उसकी दवा का पूरा असर हो गया है। वह बार-बार हमला करेगी, अनैतिकता, पाप, संस्कार, कलियुग आदि जैसे शब्दों के हथियारों को हरा देगी। वह पहले से ही अपमानित शत्रु को और भी अपमानित कर देगी। उसे इसमें अपार सात्विक संतुष्टि मिलेगी। अनैतिकता, पाप, संस्कार, कलियुग आदि का प्रभाव 'परिस्थिति' नामक एक अन्य कारक द्वारा नियंत्रित होता था, जो उसके गाँव में भी ज्ञात नहीं था।

उन्हें अपनी सख्त, कठोर और अधिकारवादी छवि बहुत पसंद थी। वे स्थिति के अनुसार अपनी इस छवि को बदल लेती थीं; लेकिन यह बदलाव बहुत क्षणिक होता था। एक बार कुछ विदेशी मेहमान मिलने आए। उन्होंने पूरा दिन उनकी मेहमाननवाज़ी में बिताया। अचानक, वे एक मीठी और मधुर भाषी महिला बन गईं। हमें उनका यह बदलाव देखकर बहुत हंसी आई। जब वे पास से गुज़रतीं, तो विदेशी महिला कहतीं, "बहन, आप इतनी सौम्य और कोमल हैं कि विश्वास करना मुश्किल है कि आप प्रभारी नर्स हैं!" (आप इतनी मधुर हैं कि विश्वास ही नहीं होता कि आप मुख्य नर्स हैं!)

उसे एहसास नहीं था कि यह उसकी तारीफ थी। बहन का मतलब है कि वह किस तरह का आतंक चाहती है, यही उसके दिमाग में चल रहा है। "नहीं, नहीं, नहीं..." उसने फुसफुसाते हुए कहा, "मैं बहुत सख्त हूँ। मैं कोई बकवास बर्दाश्त नहीं करती। मैं बहुत-बहुत..." वह आगे कुछ कह नहीं पाई।

कुल मिलाकर, इस तरह की भाषा ने फादर टेरेसा को बहुत परेशान किया था। उन्हें क्रॉसवर्ड पहेलियाँ और समर्थ की दासबोध बहुत पसंद थी। वे दासबोध पर कुछ परीक्षाएँ भी लेती थीं, लेकिन दासबोध पढ़ने के बाद भी उनकी शब्दावली बहुत सीमित थी। वे सरल शब्द भी नहीं बनाना चाहती थीं। शाम को वे 'संध्यानंद' की महाशब्द पहेली लेकर मेज पर बैठती थीं। जब मैं आया, तो उनके सवाल शुरू हो गए - "सर, उस कविता को क्या कहते हैं जो 'क' से शुरू होती है और 'त' पर समाप्त होती है?"

उसे अंग्रेज़ी क्रॉसवर्ड पहेलियाँ सुलझाने का बहुत शौक था। एक बार, यह बहुत मज़ेदार और अद्भुत था। उसका सवाल था, 'महिलाओं से संबंधित और 'UNT' पर समाप्त होने वाला चार अक्षरों का शब्द क्या है?' (अनुमानित उत्तर था: AUNT-aunt) सभी अशिष्ट और तुच्छ रेजिडेंट डॉक्टरों के दिमाग में सबसे पहला जवाब 'C' आया (CUNT महिला जननांग के लिए एक

अश्लील शब्द है)। लेकिन अगर हम 'C' बताते, तो वे बाद में हमसे इसका मतलब पूछते, और फिर हम क्या कहते? वह उसे 'मुझे नहीं पता' कहकर दुविधा में पड़ गया और ज़ोर से हंसने लगा। पिताजी भी अब उत्साहित हो गए। वह सभी वार्डों में घूमी और सभी रेजिडेंट डॉक्टरों का मनोरंजन किया। इसी बीच, मदर टेरेसा वहाँ से आईं और उन्होंने अचानक विकल्प 'A' बताकर सारा मज़ा किरकिरा कर दिया!

एक बार उन्होंने उत्तर प्रदेश की एक बहन से हिंदी में बात करने की कोशिश की। उनसे पूछा, 'क्या शौचालय खड़ा होता है?' उन्होंने गहरी आवाज़ में पूछा, "क्या शौचालय खड़ा होता है?" उस बहन का हावभाव बदल गया। थोड़ा इधर-उधर देखते हुए, उन्होंने धीमी आवाज़ में कहा, "नहीं महोदया, हम तो शौचालय का इस्तेमाल करते समय भी बैठते हैं! शौचालय का इस्तेमाल करते समय खड़े रहना ठीक नहीं है!" फिर मुँह बनाकर उन्होंने अपने पिता से धीमी आवाज़ में पूछा, "आपकी क्या राय है?"

अगर डॉक्टर से कोई गलती हो जाती, तो उसे लगातार डांटने वाला पिता भी गलती कर बैठता, और अगर उससे भी कोई गलती हो जाती, तो पूरा अस्पताल ही गलती कर बैठता। अजनबी न सिर्फ कौआ बन जाता, बल्कि मोर, एमू या शुतुरमुर्ग भी बन सकता था!

एक रात एक अजीब घटना घटी। रानी नलवाडे नाम की एक मरीज़ को दस्त होने के कारण भर्ती कराया गया। ठीक है, ठीक है। रात का नियम सब पर लागू हो चुका था, इसलिए वहाँ अफरा-तफरी मच गई। रात भर नमकीन पानी से मालिश करने के बाद, सुबह तरोताज़ा होकर रानी को महिला वार्ड के बाथरूम में शेविंग करते हुए पाया गया! जाँच करने पर पता चला कि रानी नलवाडे एक हिजड़ा थीं जिन्हें महिला वार्ड में भर्ती कराया गया था। भर्ती के समय फादर टेरेसा ड्यूटी पर थीं। 'मरीज को पुरुष वार्ड में भेजें' लिखे नोटों के बावजूद, उन्होंने उत्साह में आकर उन्हें महिला वार्ड में भेज दिया। दरअसल, वे सोच रही थीं कि अब वे उस डॉक्टर के 'घमंडी' रवैये का पर्दाफाश कर पाएंगी; लेकिन तभी हमला हो गया।

किसी बड़े अस्पताल में, किसी मरीज़ को एक वार्ड से दूसरे वार्ड में ले जाना एक बड़ी प्रक्रिया होती है। इसमें कई काम करने होते हैं, जैसे डॉक्टर के आदेश, नर्स के आदेश, दी गई और ली गई चीज़ों का हिसाब-किताब। प्रसव पीड़ा से पीड़ित मरीज़ को बुखार वाले वार्ड में भेजना आसान होता है, या इसके विपरीत, अगर बुखार से पीड़ित महिला को प्रसव पीड़ा शुरू हो गई हो, लेकिन रात में महिला वार्ड में भर्ती हुए पुरुष को सुबह पिता के वार्ड में भेजना बहुत मुश्किल होता है। मामला धीरे-धीरे गंभीर होता चला गया। पुरुष वार्ड की नर्स ने कहा, 'मैं डॉक्टर के नोट के बिना इस मरीज़ को यहाँ भर्ती नहीं करूँगी।' डॉक्टर ने कहा, 'हमने तो उसे पुरुष वार्ड में भेजने के लिए पहले ही लिख दिया है। हमें और क्या लिखना चाहिए? क्या फादर टेरेसा इसे लिख दें?' फादर टेरेसा के पास कुछ कहने का समय नहीं था।

महिलाओं के वार्ड में रानी शौचालय का इस्तेमाल करने की कोशिश कर रही थी; लेकिन अब वहां मौजूद सभी मरीजों ने उस शौचालय में जाने से इनकार कर दिया है। मामला अब इस दिशा में भी बढ़ने लगा है।

फादर टेरेसा की किसी ने मदद नहीं की। इसके विपरीत, सबने उन्हें तब तक परेशान किया जब

तक वे पूरी तरह से बेबस नहीं हो गईं। यूनिट प्रमुख, विभाग प्रमुख, अस्पताल अधीक्षक, और न जाने कितने लोगों ने उन्हें परेशान किया, मामला डीन तक पहुँच गया। अंत में, डीन ने अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए दस्तावेजों में 'रानी नलवाडे' का लिंग बदल दिया और आखिरकार उन्हें पुरुषों के वार्ड में भर्ती कर दिया गया। दस्त से कमजोर, गुलाबी कपड़े में लिपटे इस पुरुष शरीर को देखकर पुरुषों के वार्ड में हंगामा मच गया। अंत में, कल का हंगामा खत्म होते देख, रानी को तुरंत छुट्टी दे दी गई और घोषणा की गई कि दस्त बंद हो गए हैं और अब वे बेहतर महसूस कर रही हैं।

पिता की आशंकाएँ अक्सर उसके मन में आती थीं; पर उसने कभी उनसे कुछ नहीं सीखा। घटनाएँ भी एक धागे के तारों की तरह आपस में जुड़ती चली गईं। एक बार की बात है, गर्मी का दिन था। बाहर सूरज चमक रहा था, लेकिन उस विशाल अस्पताल का कमरा उमस भरा था। वहाँ एक नई सोनोग्राफी मशीन आई थी। एक वरिष्ठ डॉक्टर, जिसने अभी-अभी यह अत्याधुनिक तकनीक सीखी थी, तैयारी कर रहा था। मरीज़ की जाँच 'अंदर से', यानी योनि के रास्ते की जानी थी। इसलिए, उसे केवल एक चादर ओढ़कर बिस्तर पर लिटाया गया। फादर टेरेसा, जिन्हें इस नई तकनीक के बारे में कुछ भी नहीं पता था, बिना पलक झपकाए देखती रहीं। बिना कुछ किए बातें करना तो व्यर्थ था ही, और अगर वह कुछ करती भी, तो गुलाम उनसे सीख लेते!

आंतरिक सोनोग्राफी करते समय, सोनोग्राफी प्रोब पर प्लास्टिक का कवर लगाना आवश्यक होता है। कंडोम एक ऐसा सस्ता, सुविधाजनक और डिस्पोजेबल कवर है। इससे प्रोब साफ रहता है और इसे बार-बार इस्तेमाल किया जा सकता है। डॉक्टर ने अपनी जेब से कंडोम निकाला और उसे खोला। अब डॉक्टर क्या करेंगे, यह न समझ पाने पर फादर टेरेसा एकदम रुक गए और झट से बोले, “डॉक्टर साहब, इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। इनके कान में कॉपर टी लगा हुआ है!” यह पिता तुल्य शब्द सुनकर फादर वहीं जम गए। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि हँसें या रोएँ। उन्होंने फादर को उनकी इस गुस्ताखी के लिए एक नज़र से ही फटकारा और अत्यंत धैर्य रखते हुए शांति से जाँच पूरी की।

कुछ बीमारियों में, रोगी की जांच खांसते समय करनी पड़ती है। इसका उद्देश्य यह देखना होता है कि पेट में अचानक दबाव बढ़ने पर क्या होता है। यह जांच शौचालय या योनि क्षेत्र में एक उपकरण डालकर और प्रकाश डालकर की जाती है। एक बार ऐसी ही जांच चल रही थी। उपकरण को वांछित स्थान पर रखा गया था और डॉक्टर नीचे रोशनी जलाकर तैयार थे। ऊपर फादर टेरेसा के निर्देश दिए जा रहे थे। महिला को 'खांसने' के लिए कहा गया। वह चुप रही। उससे विनती की गई, उसे डांटा गया। यह सब हिंदी में किया गया, लेकिन महिला चुप रही। अंत में, फादर ने स्वयं खांसा। 'अरे महिला, जैसे तुम ऊपर से खांसती हो, वैसे ही नीचे से भी खांसो!' उन्होंने यह भी कहा; फिर भी कोई फायदा नहीं हुआ। इतना सब कहने के बावजूद, फादर उसके रिश्तेदारों से शिकायत करने गए कि महिला कुछ सुन नहीं पा रही है। तब उन्होंने शांति से उनसे कहा, "वह पूरी तरह बहरी है। उसे इशारों से समझाओ कि तुम क्या कहना चाहती हो।"

हम इस बात पर हंसने लगे कि पिताजी किस तरह से 'अब खांसो' का निर्देश देंगे।

फादर टेरेसा से जुड़ी कुछ किंवदंतियाँ भी प्रसिद्ध थीं। एक बार, वह अपने छोटे बेटे को बड़े उत्साह

से अस्पताल घुमाने के लिए ले गईं। प्रयोगशाला में जाने के बाद, छोटे लड़के को प्यास लगी, इसलिए उसने वहाँ रखे छोटे बर्तनों से 'पानी' पी लिया। दरअसल, वह कतारों में रखे मरीजों के मूत्र के नमूने पी रहा था! वहाँ हंगामा मच गया। फादर टेरेसा सिर झुकाकर बैठ गईं। उन्हें अपने बेटे के साथ क्या होगा, इसकी चिंता नहीं थी, बल्कि अब वे इस बात को लेकर परेशान थीं कि मरीज को रिपोर्ट कैसे दें।

कुछ कैंसरों में स्तन में गांठ पाई जाती है। इसे सिस्टर मैरी की गांठ कहा जाता है। सिस्टर मैरी, जो डॉ. मेयो की सहायक थीं और कई अन्य जिम्मेदारियां भी निभाती थीं, ने सबसे पहले इस गांठ और अपने बीच संबंध को पहचाना। उन्होंने इस पर एक शोध पत्र भी लिखा। इसके साथ ही चिकित्सा इतिहास में उनका नाम अमर हो गया। फादर की कुछ बड़ा करने की इच्छा थी। लेकिन काम की भागदौड़ में वे कभी इस इच्छा को पूरा नहीं कर पाईं। फिर भी, वे बड़ी लगन से अपने अधीन दस से बीस लोगों और अपने हाथों में चार से पांच लोगों की देखभाल करती थीं। उनका अनुशासन, समय की पाबंदी और नई चीजें सीखने की ललक प्रशंसनीय थी। वे अक्सर नई-नई योजनाएँ बनाती थीं, लेकिन डॉक्टर अक्सर उनकी बात अनसुनी कर देते थे और उन्हें सही राह पर चलने के लिए प्रेरित करते थे। हालांकि, उनका एक विचार साकार हुआ। जब वे सेवानिवृत्त होने वाली थीं, तब उन्होंने मातृ मार्गदर्शन कक्षा शुरू की। उन्होंने इसे पूरी लगन से चलाया।

जिस दिन अस्पताल से छुट्टी होती थी, वह सभी महिलाओं को एक साथ बुलाकर स्तनपान के बारे में एक लंबा भाषण देती थी। उसके विचार अच्छे थे। वह जो कर रही थी वह भी अच्छा था, लेकिन उसका भाषण भी प्रेरक नहीं था। वह बस बोलती रहती थी, जैसा उसे बताया जाता था। फिर प्रश्नोत्तर सत्र होता था।

एक बार पिता की बहू ने बच्चे को जन्म दिया। फिर उसने हमारे 'विभाग प्रमुख' को भाषण देने के लिए बुलाया। वे भी आए। अंत में, बहू ने पूछा, "बच्चे को दूध पिलाते समय मुझे किस प्रकार का आहार लेना चाहिए?"

“किसी भी बात का पालन नहीं करना चाहिए।” महोदय का संक्षिप्त, सटीक और स्पष्ट उत्तर! अब महोदय ने विपरीत प्रश्न पूछा, “यदि किसी कारणवश भैंस का दूध पिलाना पड़े, तो क्या भैंस को विशेष आहार दिया जाएगा?”

बहू ने धीरे से कहा, "...लेकिन साहब, भैंसों की सास नहीं होती!"

बहू के इस हमले से पिता के मुंह पर चोट लगी।

फादर टेरेसा को भी पारिवारिक दुख थे। कभी-कभी वह अपने दिल की बात खुलकर कह देती थीं। एक दिन वह अपने दुखों को इस तरह बयां कर रही थीं... उनके गले में एक गांठ सी बन गई थी... मुश्किल से निगलते हुए उन्होंने कहा, "हमारे यहां बस एक ही समस्या है, वे मेरी तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं देते। अगर इस नजरिए से देखें तो वे अच्छे पशुचिकित्सक हैं।"

फादर टेरेसा का यहीं निधन हो गया। उन्होंने हमारे कई शिक्षकों को उनके विद्यार्थी जीवन से लेकर शिक्षक जीवन तक देखा था। नर्सिंग की छात्रा रहते हुए उन्होंने कई प्रोफेसरों के साथ काम किया था और उन्हें चिढ़ाया भी था। इसीलिए वे सभी से व्यक्तिगत रूप से बात करती थीं। हम छात्र इस बात से बहुत नाराज़ होते थे। लेकिन प्रोफेसर मामला संभाल लेते थे। एक कारण तो उनके

पुराने संबंध थे और दूसरा यह कि फादर टेरेसा को हर बात की पूरी जानकारी होती थी। ऑपरेशन में किसने क्या किया, किसने क्या गलती की, कौन किससे झगड़ रहा था, कौन किसकी चुगली कर रहा था... उनके पास इन सब बातों का रिकॉर्ड होता था। इसीलिए वे एक तरह से बेबाक थीं। फादर टेरेसा, जिन्होंने हमारे शिक्षकों का खुलेआम अपमान किया और हमारी स्थिति को धूमिल किया, निवासियों के बीच बेहद अलोकप्रिय थीं। उनके सेवानिवृत्ति दिवस पर आयोजित विदाई समारोह में एक भी व्यक्ति उपस्थित नहीं हुआ; चाय और समोसे लेकर भी कोई नहीं आया। चाय ठंडी पड़ गई। समोसे मुरझा गए। मैं समझ गया कि फादर टेरेसा का क्या मतलब था।

पिताजी का देहांत हो गया और विभाग की रौनक भी मिट गई। हमें इस बात की तसल्ली थी कि उसने विदाई समारोह का बहिष्कार करके आखिरकार अपने जीवन को समाप्त कर लिया, और उसे इस बात की तसल्ली थी कि उसने अंत तक 'मैं झुकूँगी लेकिन नहीं झुकूँगी' के सिद्धांत पर काम किया। संक्षेप में, वियोग के बाद दोनों अपने-अपने स्थानों पर सुखी जीवन जीने लगे!

•

भूलेश्वर, बेशक, हमारे एनेस्थेटिस्ट मित्र हैं।

• सीज़ेरियन ऑपरेशन किया गया... लेकिन बच्चा बिल्कुल भी सांस नहीं ले रहा था... वह बेसुध पड़ा था... उसकी जिंदगी खत्म होने वाली थी। हम सबकी जिंदगी उसके साथ दांव पर लगी थी। महिला बहुत देर से आई... उसके गर्भ में पल रहा बच्चा आधा पैदा हो चुका था... उसकी धड़कनें लगभग चालीस थीं; जबकि लगभग एक सौ चालीस होनी चाहिए थीं। यह मेरे लिए बहुत बड़ा झटका था। जब मैंने उसे बताया, तो वह और उसके रिश्तेदार भी चौंक गए... हम उसे तुरंत ऑपरेशन थिएटर ले गए। हमने उसे तैयार किया, अस्पताल ले गए, उसके हस्ताक्षर लिए, ट्रॉली लगाई, एनेस्थेटिस्ट को सूचित किया, सब कुछ हो चुका था। सौभाग्य से एनेस्थेटिस्ट खाली था। महिला के अस्पताल पहुंचने के ठीक अठारहवें मिनट में हमने बच्चे को जन्म दिलाया...

तब तक उसका शरीर लगभग साँस ही ले रहा था। सबको पता था कि आगे क्या करना है। मेरे नवजात शिशु विशेषज्ञ मित्र सब कुछ यंत्रवत कर रहे थे, बच्चे को पोंछ रहे थे, उसे सही स्थिति में रख रहे थे, मवाद निकाल रहे थे, उसकी नाक और मुँह साफ़ कर रहे थे, उसकी धड़कन जाँच रहे थे, और जब इससे भी फ़ायदा नहीं हुआ, तो उसे कार्डियक मसाज दे रहे थे। अब बच्चे के चेहरे पर मास्क लगाया गया और एनेस्थेटिस्ट ने ऑक्सीजन पंप करना शुरू कर दिया। बच्चा, जो बेहोश हो चुका था, काफी देर तक साँस नहीं ले पाया। फिर एनेस्थेटिस्ट ने जल्दी से लैरिंजोस्कोप निकाला, उसे बच्चे के गले में डाला और एक पतली नली को वायुमार्ग में सरका दिया। अब मास्क नली के ज़रिए काम करने लगा... आसान, आसान, ज़्यादा सुविधाजनक। इसी बीच, एक तरफ बच्चे को सलाइन और ग्लूकोज़ आदि दिया जा रहा था। नर्स ने कहा कि दस मिनट बीत चुके हैं। यह भी सामान्य प्रक्रिया थी। एक व्यक्ति घड़ी देखकर हमें बताता रहा कि कितना समय बीत चुका है। हर काम किस समय सीमा में करना है और कितनी देर तक करना है, यह तय किया जाता था। यह सब मिन्नतों के ज़रिए किया जाता था। यह सारा प्रयास जीवित व्यक्ति से मिलने से बचने के लिए किया जा रहा था। जब तक हमारे हाथ चल रहे थे, बच्चा साँस ले रहा था। जैसे ही हमने हाथ रोके, उसने साँस लेना बंद कर दिया। लेकिन सौभाग्य से, इस सारी कोशिश के कारण उसका दिल रुका हुआ था। बीस मिनट बीत चुके थे। हमारा धैर्य जवाब दे रहा था। एनेस्थेटिस्ट बच्चे की जाँच कर रहा था और धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से उसके फेफड़ों में हवा भर रहा था। वह और मैं एक-दूसरे को निराशा से देख रहे थे। उसी क्षण, बच्चे को हिचकी आई - एक बार बहुत धीमी, फिर बहुत कमज़ोर, फिर थोड़ी तेज़। अब बच्चा नाक से साँस लेने लगा। बहुत ही निश्चित रूप से। अब एनेस्थेटिस्ट ने गति बदल दी। उसका पंप बच्चे की छाती की धड़कन के साथ ताल मिलाने लगा। दोनों ने अब ताल पकड़ ली थी। दोनों एक युगल गीत गाने लगे मानो कोई ऊँचा गीत गा रहे हों। अंत में, बच्चा ज़ोर-ज़ोर से साँस लेने लगा। एनेस्थेटिस्ट ने कृतज्ञता भरे भाव से सभी को देखा और बच्चे के गले से ट्यूब निकाल दी। एक लंबी आह के साथ, बच्चा रोने लगा और हम सभी को थोड़ी राहत और खुशी महसूस हुई। बच्चा रोने लगा और बेहोशी की दवा देने वाले डॉक्टर की आँखों से खुशी के आँसू बहने लगे। उसने अपने होंठों को बच्चे के होंठों से दबाया, लेकिन लाख कोशिश करने के बावजूद भी वह आँसू नहीं रोक सका।

वो ऐसे ही हैं। वो बहुत भावुक इंसान हैं। वो मेरे दोस्त हैं। वो मेरे सच्चे दोस्त हैं। ऑपरेशन थिएटर में हर सर्जन का सच्चा और करीबी दोस्त एनेस्थेटिस्ट होता है। लेकिन उससे भी बढ़कर, उनका जीवन से गहरा रिश्ता होता है... न सिर्फ अपने जीवन से, बल्कि मरीज के जीवन से! इसीलिए मैं ऐसे लोगों को जीवन भर का दोस्त कहता हूँ। ऊपर बताई गई घटना मेरे एक एनेस्थेटिस्ट दोस्त के साथ हुई थी, लेकिन ये सब बातें जीवन भर के दोस्तों के बारे में हैं।

एक बार हमने एक नवजात शिशु को सांस देकर आगे के इलाज के लिए एम्बुलेंस में भेजा; लेकिन शिशु रास्ते में ही मर गया। जब हम लौटे, तो शिशु के पिता ने हम पर झूठ बोलने का आरोप लगाया। हम शिशु को बचा नहीं सके, लेकिन हमारी कोशिशें नेक थीं। दरअसल, इससे ज़्यादा कुछ हमारे बस में नहीं था। लेकिन इससे पिता संतुष्ट नहीं हुए। जाते हुए उन्होंने कहा, "आपने मुझे एक मृत शिशु दिया। आप शव को लेकर हमें एम्बुलेंस में घुमाते रहे..." यह सुनकर हमारे एनेस्थेटिस्ट की आँखों में आंसू आ गए। वे बेईमानी के आरोप को सहन नहीं कर सके।

मैं मज़ाक में (और प्रशंसा के साथ) इन एनेस्थेटिस्टों को 'भूलेश्वर' कहता हूँ। अगर वे महिला एनेस्थेटिस्ट हैं, तो उन्हें 'भूलाबाई'! ये भूलेश्वर या भूलबाई सचमुच बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। सर्जन सर्जरी में पूरी तरह डूबे रहते हैं, इसलिए उन्हें अपने आसपास की हर चीज़ पर नज़र रखनी पड़ती है। सिस्टर को बुलाना, फ़ोन का जवाब देना, मोबाइल लेना, सही समय पर ज़रूरी धागे और उपकरण निकालना, रक्त और अन्य फ़ॉर्म भरना... भूलेश्वर ये सब करते हैं; लेकिन वे टूटे हुए प्लग को ठीक करना, लाइट बदलना, नए स्टाफ़ को सक्शन मशीन जोड़ना सिखाना जैसे काम भी उत्साह से करते हैं। ये सब करते हुए, वे मरीज़ पर लगातार नज़र रखते हैं। उन्हें न केवल चौकस, बल्कि अत्यंत सतर्क भी कहा जाना चाहिए। वे सर्जन की हरकतों से जान जाते हैं कि ऑपरेशन कहाँ तक पहुँच चुका है, और उपकरण की आवाज़ से समझ जाते हैं कि सर्जन क्या काट रहे हैं। उसी के अनुसार वे मरीज़ को सही दवाइयाँ देते हैं। अगर ऑपरेशन में ज़रूरत से ज़्यादा समय लगे, या मरीज़ को ज़रूरत से ज़्यादा खून बहे, तो सर्जन को उन्हें कुछ कहने की ज़रूरत नहीं पड़ती। वे चुपचाप सही काम करते हैं। सर्जन उस पर नजर रखता है, लेकिन उसे डांट पड़ रही है। वह कहता है, 'मैं अपना काम ठीक से कर रहा हूं, आप भी अपना काम ठीक से करें।' पेट बंद करने से पहले एक बार मैंने मॉनिटर पर नज़र डाली। मैं ब्लड प्रेशर देखना चाहती थी। मेरे एनेस्थेसियोलॉजिस्ट को गुस्सा आ गया। उन्होंने (सही ही) कहा, 'अगर ब्लड प्रेशर कम होता, तो मैं तुम्हें बता देता। अगर मैंने नहीं बताया, तो सब ठीक है। तो तुमने यहाँ क्यों देखा?' लेकिन वो खुद लगातार मुझ पर नज़र रख रहे थे। सलाहों की बौछार जारी रही...

"पहले उस बर्तन को बांधो, फिर उसका विच्छेदन करो।"

"बस पांच मिनट के लिए पट्टी लगा दें और चुपचाप इंतजार करें, खून बहना बंद हो जाएगा।"

"आप खुश हो सकते हैं, लेकिन फिर भी विश्लेषण की आवश्यकता है।"

मैं हमेशा उनकी सलाह मानता हूँ; क्योंकि भुलेश्वर ने किसी भी अन्य सर्जन की तुलना में अधिक ऑपरेशन देखे हैं।

कुल मिलाकर, एनेस्थेसियोलॉजिस्ट अलग-अलग सर्जनों की तकनीकों को देखकर ही पहचान सकते हैं। उनका विवेक बहुत स्पष्ट होता है। अगर उन्हें कोई और ऑपरेशन नहीं करना होता, तो

उनकी सलाह एकदम सटीक, मरीज़ और सर्जन दोनों के लिए फायदेमंद होती है। लेकिन अगर उन्हें कोई और ऑपरेशन करना हो, तो वे कुछ नहीं कह पाते। ऐसे में संभावना यही होती है कि उन्होंने सलाह देते समय इस बात का ध्यान रखा हो कि ऑपरेशन जल्द से जल्द पूरा हो जाए।

जैसे नॉन-स्ट्राइकर छोर पर खड़ा बल्लेबाज रन बनाने के लिए हमेशा तैयार रहता है, ठीक उसी तरह यह समूह भी अगली कॉल का इंतज़ार करता रहता है। उन्हें दो दिन पहले ही बता दें, सुबह फोन करके याद दिला दें, ट्रॉली को थिएटर में रखने से पहले उन्हें अच्छी तरह से तैयार कर लें... आप जो चाहें करें, सही समय पर कॉल आते ही यह 'काम-परस्त' एक 'मेहनती घोड़े' की तरह काम करेगा और सबसे पहले वहाँ पहुँचेगा! शीर्ष अधिकारी फोन पर कहेंगे, 'वह आ रहा है...', 'वह जा चुका है...', 'वह पहुँच रहा है...'। ऐसे समय में, उनकी भाषा में केवल वर्तमान काल ही काफी होता है!

मेरे पास सात-आठ मामलों की अच्छी-खासी सूची है और ये आदमी इतना उत्तेजित होकर कहीं गायब हो गया... अब ऐसे समय में मैं किसे बुलाऊँ? बहुत तनाव है। ऑपरेशन कब शुरू होगा? रिश्तेदार बेचैन हैं। मरीज़ भी तनाव से तंग आ चुके हैं। तभी उसकी गाड़ी की आवाज़ आती है... मुझे बहुत गुस्सा आता है! लेकिन जैसे ही वो सीढ़ियों से ऊपर आता है, वो चिल्लाता है, "सिस्टर, अगला मरीज़ प्लीज़!" मेरा सारा गुस्सा शांत हो जाता है। वो जल्दी से मरीज़ को बेहोश करता है और कहता है, "जी हाँ, बेहोश हो गया है, चलिए शुरू करते हैं।" मैं चुपचाप अपना स्केलपेल उठाती हूँ और चीरा लगाती हूँ।

मुझे गुस्सा देखकर वो अब और भी समझदार बनने का नाटक करता है। वो एक अच्छे लड़के की तरह बर्ताव करता है और मुझे बताता है कि वो कितनी बेहतरीन सर्जरी करता है। ये सब वो मुझे बिना बताए करता है, जैसे सही समय पर सिर नीचे करना, मरीज़ को आराम देना, और फिर धीरे-धीरे मुझे बताने लगता है कि देरी का कारण अपरिहार्य था। वो तब तक बोलता रहता है जब तक मुझे वजह समझ नहीं आ जाती। आमतौर पर, मुझे उसकी वजहें समझ नहीं आतीं; लेकिन मैं सुनती रहती हूँ। पिछली बार जब मेरी सर्जरी में समय लगा था, तो वो धीरे-धीरे मुझे याद दिलाता है कि उसने उस डॉक्टर से क्या कहा था जिसने मेरे सामने अगली सर्जरी का आदेश दिया था। वो मुझे ये भी यकीन दिलाता है कि उस समय मैंने उसकी बातों का पूरा समर्थन किया था। इसलिए आज का उसका गुस्सा माफ़ करने लायक है। वो सहानुभूति पाने के लिए कहता है, "एक एनेस्थेटिस्ट द्रौपदी की तरह होती है... उसे पाँच पतियों की देखभाल करनी पड़ती है!"

कम आत्मसम्मान के साथ खुद से बातें करना इन सभी भूलेश्वरों की खासियत है! इस मामले में उर्दू कवियों को इनका शिष्य बनना चाहिए। ‘हम भाग्यशाली एनेस्थेटिस्ट हैं, तुम क्या हो, सर्जन? हम वो कॉल बॉय हैं जो तुम्हारे बुलावे पर आते हैं, तुम क्या हो, चिकन चरवाहे! हम वो औरतें हैं जो गाँव में घड़े लेकर घूमती हैं, तुम क्या हो...!’ यही उनका पसंदीदा विषय है। वे हमेशा इस बात पर चर्चा करते हैं कि सर्जन कितना अमीर है और एनेस्थेटिस्ट कितना गरीब। उनका मानना है कि लक्ष्मी सर्जन के घर को पानी से भर देती हैं और कुबेर उनके रक्षक हैं। अगर सर्जन के पास उतना पैसा होता जितना एनेस्थेटिस्ट कल्पना करते हैं... मैं इस विचार में खो जाता हूँ। बेशक, उनके घर में गरीबी के अठारह स्तरों का वर्णन करना ऐसा होगा जैसे, ‘मैं चंदन के पलंग पर बैठकर, सोने

की थाली में श्रीखंडपुरी खाकर जैसे-तैसे दिन गुजार रहा हूँ'! 'मुझे भी आपकी तरह गरीबी का आशीर्वाद मिले, यही ब्रह्मांड के स्वामी से प्रार्थना है,' और फिर सर्जन को यह कहकर विषय समाप्त करना पड़ता है।

हम दोनों का तालमेल नहीं बैठ सकता, तुम्हारे बिना कुछ नहीं हो सकता, यही है सर्जन और एनेस्थेटिस्ट का रिश्ता। लेकिन ये दोनों एक गायक और उसके साथी की तरह हैं। दरअसल, गायक और उसके साथी की तुलना सही नहीं है, क्योंकि इसमें गायक का महत्व अधिक है। बल्कि, यह कहना अधिक उचित होगा कि यह रिश्ता पति-पत्नी के रिश्ते जैसा है। 'संसार के रथ के दो पहिए बिना खड़खड़ाहट के चलते हैं...' इत्यादि! इस रिश्ते में क्रोध, नाराजगी, प्रेम, घृणा, वियोग, सब कुछ है। जब अंत में एनेस्थेटिस्ट मौजूद नहीं होता, तो सर्जन को लगातार लगता है कि उसने कोई गलती कर दी है। और कई दिनों बाद आने वाला एनेस्थेटिस्ट लगातार इस बात पर नजर रखता है कि कहीं उसकी अनुपस्थिति में कोई और तो नहीं आ गया। क्योंकि ईर्ष्या भी यहाँ मौजूद है। पेंटो इंजेक्शन की सुई वही है, ट्यूब ऊपर से बंद नहीं है, केटामाइन इंजेक्शन का निशान सही जगह पर नहीं है... कुछ न कुछ गड़बड़ जरूर होती है। फिर, "मैं कभी भी कलम में सुई नहीं छोड़ता" के हल्के से संकेत के साथ, चिमटी हटा दी जाती है और "सवात" प्रिय नहीं रह जाता है।

एनेस्थेटिस्टों का यह समूह रेशमी चिमटियों का इस्तेमाल करके आसानी से एक अंतरंग रेशमी बंधन बनाने में कामयाब हो जाता है!

भले ही हमारा रिश्ता कितना भी सहज और सुचारू क्यों न हो, मेरे एक एनेस्थेसियोलॉजिस्ट मित्र का रूप-रंग देखने लायक है। जब वह किसी मरीज के संपर्क में नहीं होते, तो साफ-सफाई का भी ध्यान नहीं रखते। उनकी दाढ़ी आधी बढ़ी हुई होती है, बाल बिखरे होते हैं, कमीज आधी अंदर और आधी बाहर होती है, पैंट ठीक साइज की नहीं होती, बेल्ट एक तरफ लटकी रहती है; और वह इन सब चीजों को शान से दिखाते हैं। अगर उन्होंने ढेर सारी टी-शर्ट पहनी हों, तो आप आसानी से समझ जाएंगे कि वे उनके बेटे की हैं! 'कपड़े क्यों पहनते हो? ज्यादातर समय मैं ऑपरेशन थिएटर में रहता हूं, मुझे ऑपरेशन थिएटर की ड्रेस पहननी पड़ती है। घर जाकर मैं बरमूडा शॉर्ट्स पहनता हूं।' उनका यही तर्क होता है। लेकिन अगर आप उनके कपड़ों से ही अंदाजा लगा लें, तो आप धोखा खा जाएंगे। "अगर मरीज की नस में मोटी सुई चुभो दी जाए और गले (श्वास नली) में ठीक से ट्यूब डाल दी जाए, तो मैं सड़क पर किसी को भी एनेस्थीसिया देने को तैयार हूं," यह कोई खोखला वादा नहीं, बल्कि सरासर सच है! उन्होंने अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों में बिना किसी हिचकिचाहट के कई लोगों की जान बचाई है।

इन सभी वर्षों में मैंने उन्हें कभी थका हुआ नहीं देखा। उन्होंने कभी नहीं कहा, 'मुझे अब और फोन मत करना।' हो सकता है कि उन्होंने कभी-कभार कोई नियोजित सर्जरी टाल दी हो, लेकिन आपात स्थिति में उन्होंने कभी मेरा हाथ नहीं छोड़ा। ऐसा पेशेवर रवैया बहुत कम देखने को मिलता है। मैं भी ऐसा नहीं कर पाई हूँ।

एनेस्थीसिया ही उसका पहला और आखिरी प्यार है! एनेस्थीसिया विशेषज्ञ, जो अपनी पत्नी और बच्चों को सैर पर ले जाने के लिए कार में बैठा है, उन्हें उतारने के बाद उससे मिलने आता है।

उसका परिवार भी उसके इस व्यवहार का आदी हो चुका है। अगर वे उसके साथ यात्रा पर भी जाते हैं, तो गाँव पहुँचने पर ही उस पर विश्वास करते हैं। यात्रा और मनोरंजन की तो बात ही छोड़िए, वह अपने आराम के बारे में भी ज्यादा नहीं सोचता।

सर्जन और एनेस्थेटिस्ट के बीच एक प्रेमपूर्ण संवाद का मंचन किया जाता है:

“कल आपने फोन क्यों नहीं किया? आपने एसएमएस क्यों भेजा?” एनेस्थेटिस्ट ने पूछा।

"अरे, बहुत देर हो गई थी! मुझे लगा कि तुम थकान के मारे सो गए होगे। तुम्हारी नींद में खलल डालने की क्या ज़रूरत थी?"

लेकिन सर्जन की समझदारी एनेस्थेटिस्ट की पेशेवरता पर सवाल उठाती है। "स्लीप बीप जैसी कोई चीज नहीं होती, जब भी आपको ठीक लगे तब कॉल कर दीजिए," वह जोर देकर कहता है। यह बिल्कुल सच है। उन्हें कभी भी बुलाइए, वे हाजिर हैं। ऐसे समय में वे श्री कृष्ण हैं और चिकित्सक द्रौपदी। कभी-कभी अचानक कोई ऐसी समस्या आ जाती है कि कपड़े उतारने का समय आ जाता है। लेकिन उन्हें कभी भी, दिन हो या रात, बुलाइए, यह सदा तत्पर सेवक मारुति भुली की संजीवनी का ज्ञान लेकर तुरंत हाजिर हो जाएगा!

सर्जन अपने ही एनेस्थेटिस्टों पर सर्जरी करने पर बहुत गर्व महसूस करते हैं। सबसे अच्छा सर्जन वही होता है जिससे एनेस्थेटिस्ट खुद या अपने परिवार के सदस्यों के ऑपरेशन करवाते हैं! क्योंकि वे बारह अस्पतालों में जा चुके होते हैं, इसलिए उन्हें सब कुछ पता होता है। ऐसे 'कुशल' व्यक्ति की प्रतिष्ठा एक सर्जन के लिए बहुत मायने रखती है। भले ही हम, मेरे जैसे स्त्री रोग विशेषज्ञ, एनेस्थेटिस्टों के डॉक्टर न बन सकें, लेकिन हम निश्चित रूप से उनके मरीज बनना चाहेंगे। मुझे यह तब एहसास हुआ जब एक बार भुलेश्वर ने अपनी पूरी ताकत और कौशल से मेरे सामने एक महिला मरीज को मौत के मुंह से खींचकर बाहर निकाला। और वह यह सब बहुत शांति से कर रहे थे। उन्होंने एक पल के लिए भी अपना ध्यान नहीं भंग किया, न ही उन्हें 'आगे क्या करना है' के बारे में सोचना पड़ा। उन्होंने झटपट रेड्या को 'नो पार्किंग' बोर्ड दिखाया, यम से 'फिर आना!' कहा और उस महिला की जान बचा ली! हम बाकी सब तो कब के उम्मीद छोड़ चुके थे, लेकिन उन्होंने अंत तक संघर्ष किया। उनका अद्भुत प्रदर्शन देखकर मैंने अनजाने में कहा, "जब मैं मरने लगूंगा, तो मैं आपको फोन करूंगा! मैं निश्चित रूप से आपका मरीज बनना चाहूंगा!"

एक समय की बात है, दो सर्जनों ने बड़ी कुशलता से, बेशक एक एनेस्थेटिस्ट की मदद से, एक बहुत जटिल ऑपरेशन किया। फिर खुशाल और उसकी पत्नी ने कोका-कोला मंगाई। वे अपने प्रिय भुलेश्वर को भूल गए। कुछ ऐसा हुआ था जिससे उसका दुख असहनीय हो गया था। कोका-कोला महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है सम्मान, बराबरी का व्यवहार। कई मरीज़ और डॉक्टर एनेस्थेटिस्ट और एनेस्थीसिया के महत्व को नहीं जानते। आठ, अठारह, साठ या अस्सी-आठ साल के व्यक्ति का अपेंडिक्स ऑपरेशन आमतौर पर एक जैसा ही होता है, लेकिन कोई यह नहीं समझता कि उन्हें अलग-अलग तरह के एनेस्थीसिया देने पड़ते हैं। इसीलिए एनेस्थीसिया को गौण माना जाता है। वास्तव में, जहाँ भी जीवन में कोई समस्या होती है, वहाँ एनेस्थेटिस्ट का होना ज़रूरी है। अगर वे न हों, तो मृत्यु निश्चित है। जब मैं मेडिकल कॉलेज में था, तो हमारे एनेस्थीसिया शिक्षक ने सबसे पहले यही कहा था, "छोटी सर्जरी जैसी कोई चीज़ हो सकती है,

लेकिन छोटी एनेस्थीसिया जैसी कोई चीज़ नहीं होती।" (कुछ सर्जरी मामूली हो सकती हैं, लेकिन 'मामूली एनेस्थीसिया' जैसी कोई चीज नहीं होती।)

वह मरीज़ जो हमेशा मौत के कगार पर होता है और वह एनेस्थेटिस्ट जो आँखों में तेल लगाकर उस पर नज़र रखता है। चाहे ऑपरेशन हो या दुर्घटना के बाद सड़क पर पड़ा कोई व्यक्ति; चाहे लाइलाज कैंसर से जूझ रहा कोई थका हुआ इंसान हो या प्रसव पीड़ा से बेहाल कोई युवती; एनेस्थेटिस्ट के चमत्कार से सब कुछ सहनीय हो जाता है - यहाँ तक कि जन्म भी... और मृत्यु भी!

मैं सचमुच मानता हूँ कि चाहे कोई भी धर्म, धार्मिक नेता या शास्त्र मानव जीवन के विनाश की कितनी भी निंदा करे, दर्द से मुक्ति के सच्चे संदेशवाहक तो एनेस्थेटिस्ट ही हैं। इस विचार को जन्म देने का श्रेय डॉ. सिम्पसन को जाता है, जो एडिनबर्ग के रहने वाले हैं। आज भी जब आप वहाँ जाते हैं, तो आपको हमेशा उनका घर दिखाया जाता है। मैं भी एक बार एडिनबर्ग गया था। मैंने भी वह घर देखा था। मैं उस घर के सामने सिर झुकाने वाला नहीं था। यहाँ तक कि अगर मैं हाथ जोड़कर या किसी कोने में सिर झुकाकर भी अपनी भावनाओं को व्यक्त करता, तो वह काफी नहीं होता। फिर मैंने वहीं सड़क पर प्रणाम किया। मैंने अपने छोटे बेटे से भी नमस्कार करवाया। मैंने डॉ. सिम्पसन के घर के सामने प्रणाम करते हुए हमारी एक तस्वीर अपने प्रियजन को भेजी। उस समय, मैंने मन ही मन पूरे भुलेश्वर समुदाय को प्रणाम किया था...

क्योंकि, चाहे मैं कितना भी सोच लूँ, मुझे सार्वजनिक शर्मिंदगी से बचने के लिए अस्पताल में अपने एनेस्थेटिस्ट के सामने झुकना ही था? और मैंने जो किया उससे उसे कोई खास फायदा नहीं होने वाला था?

•

'प्रसु' का जन्म

• प्रसन्नाचित्त उर्फ प्रसू! अपने नाम की तरह ही, वह खुशमिजाज, आत्मविश्वासी और उच्च शिक्षित हैं। वह अपने दानिश पति के साथ हमारे गांव के एक प्रतिष्ठित गैर सरकारी संगठन में काम करती हैं। गर्भावस्था के दौरान वह मुझसे परामर्श के लिए आईं और उन्होंने ऐसी महिला रोगियों के प्रति हमारे डॉक्टरों के रवैये को पूरी तरह बदल दिया! वह धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलती थीं और पहली ही मुलाकात में मुझे अवाक कर दिया। मैंने उनसे उनकी और उनकी गर्भावस्था के बारे में हमेशा की तरह पूछा। इस पर उन्होंने कहा, "डॉक्टर साहब, मैं आपको दोबारा उनके पास नहीं भेजूंगी! मैं तभी आऊंगी जब आप मुझे बहुत पेशेवर पाएंगे!" तो जब मैं उनकी जांच कर रही थी, वह मेरी भी जांच करने वाली थीं। थोड़ी हैरानी और थोड़ा गुस्सा मन में दबाकर मैंने अपना काम जारी रखा।

कुछ देर बाद उसने कहा, “मैं चाहती हूं कि डॉक्टर मेरे शरीर का सम्मान करें। मैं आपके व्यवहार, शब्दों और कार्यों से यह महसूस कर सकती हूं। धन्यवाद, डॉक्टर।”

मैं थोड़ा असमंजस में थी। मैंने कुछ भी ऐसा नहीं किया था जो हमेशा की तरह न हो। मैंने उससे कहा, "प्रसव के लिए पुरुष डॉक्टर चुनना एक महिला के लिए मुश्किल फैसला होता है।"

"ऐसा नहीं है, डॉक्टर साहब, पुरुष और महिला में कोई फर्क नहीं होता। लेकिन मैं पहले मुंबई में एक महिला डॉक्टर को दिखाने गई थी। उन्हें मेरा पेट देखने के लिए मेरी ड्रेस उठानी पड़ी। उन्होंने मुझसे कुछ पूछा नहीं, कुछ बताया भी नहीं। मुझे बहुत अपमान महसूस हुआ। मुझे बहुत शर्मिंदगी हुई। मैं फिर कभी वहां नहीं गई।"

यह अलग था। किसी भी मरीज ने मुझे मेरे शरीर पर मेरे अधिकारों के बारे में इतनी स्पष्ट रूप से कभी नहीं बताया था। मुझे पूरा विश्वास था कि मैंने उसकी परीक्षा पास कर ली है।

जब उसने कहा कि वह अगली मुलाकात के लिए तय समय पर आएगी, तो यह पक्का संकेत था कि वह मुझे पसंद करती है। इस मुलाकात में भी उसने अपना अगला कार्यक्रम बहुत अच्छे से तैयार किया था। आते ही उसने मुझसे सवाल पूछना शुरू कर दिया। ज़्यादातर सवाल सामान्य थे और मुझसे अपेक्षित थे, लेकिन उसने उनके जवाब गूगल से भी ढूंढ लिए थे। मुझे बस उन्हें मंज़ूरी देनी थी। गर्भावस्था के दौरान मुझे कितना वज़न बढ़ाना चाहिए, कब और कौन से टेस्ट करवाने चाहिए, कौन से व्यायाम, कौन सी दवाइयाँ, उसके पास सारी जानकारी तैयार थी। संकुचन कैसा महसूस होता है, बच्चे का सिर नीचे होने पर कैसे पहचानें, कौन सी दर्द निवारक दवाएँ, कौन सी पोज़िशन, प्रसव की प्रगति की निगरानी कैसे करें, एक या एक से ज़्यादा सवाल! असल में, उसे मेरी ज़रूरत ही नहीं थी। वह इतनी अच्छी तरह से तैयार थी कि वह सब कुछ खुद ही संभाल सकती थी। मेरे डॉक्टर के परीक्षकों ने भी मुझसे इतने सवाल नहीं पूछे थे जितने उसने पूछे। हर बार उसके पास सवालों का अंबार होता था। शुरू में मुझे लगा कि उसे अपने स्त्रीत्व पर बहुत गर्व है। फिर यह बदल गया। उसे यकीन हो गया कि उसमें नारीत्व की भावना है।

उनके पति भी उतने ही उत्साहित थे जितनी वह थीं। आते ही उन्होंने घोषणा कर दी थी कि वे प्रसव के दौरान मौजूद रहेंगे। मैंने उनकी उपस्थिति इस शर्त पर स्वीकार की कि मैं बेहोश नहीं

होऊंगी। फिर उन्होंने प्रसव के दौरान अपनी पत्नी का सहारा देने के लिए गहन अध्ययन शुरू कर दिया - न केवल मानसिक रूप से, बल्कि शारीरिक रूप से भी। हर बार वे मुझे अपने अध्ययन में हुई प्रगति के बारे में बताते और मुझसे हर बार इसकी सराहना करने की अपेक्षा करते। वे मुझे प्रसव के पहले, दूसरे और तीसरे चरण, उनके बीच के अंतर, प्रत्येक चरण में महिला को होने वाली कठिनाइयों, पति के कार्यों, डॉक्टर के कार्यों, सब कुछ इस तरह दिखाते जैसे कोई कहानी सुना रहे हों। वे स्तनपान के बारे में भी बड़े उत्साह से बात करते थे। स्वाभाविक रूप से, वे हमारे कर्मचारियों के बीच काफी लोकप्रिय हो गए। दरअसल, विदेशी होने के कारण, उनके इस तरह के व्यवहार ने सभी की जिज्ञासा जगा दी। सभी को पता था कि आने वाले दिनों में पत्नी के साथ कई अद्भुत चीजें होंगी (और वह ऐसा तब भी नहीं करतीं जब बेटी होती)। कर्मचारियों ने भी उनके इस स्वभाव को स्वीकार कर लिया था। इसलिए, किसी पति का अपनी पत्नी के गर्भधारण में इतनी दिलचस्पी लेना एक अजीब घटना थी, और यह बात बेहद नापसंद भी की जाती थी। सौभाग्य से, उन्हें मराठी नहीं आती थी, वरना हमारी महिला कर्मचारी उन्हें यह कहने में जरा भी संकोच नहीं करतीं, 'हमारे साहब यह काम करने में सक्षम हैं, इसलिए हमें आपकी परेशानी नहीं चाहिए!'

एक बार वो आठ महीने के बच्चे को गोद में लिए हुए आए। कमर पर हाथ रखे, चलने में मुश्किल... ये देखकर हम सब, और मैं भी, हैरान रह गए। फिर उन्होंने खुद बताया - "सात-आठ किलो का बोझ लेकर लगातार घूमना आसान नहीं है। चलना, झुकना, संतुलन बनाए रखना - सब कुछ मुश्किल है।" खुद इसका अनुभव करने के लिए उन्होंने इंटरनेट से ये 'एक्सपीरियंस बैग' मंगवाया था। पिछले तीन दिनों से वो इसे अपने पेट से बांधकर घूम रहे थे। ये एक रबर का थैला था, जिसमें पानी भरा था और बैटरी से चलने वाला एक बच्चा था! हम प्रसू के कुंकवा धान्य की इस 'सती किस्म' को देखकर दंग रह गए।

एक बार वह मुझे दिखाने के लिए चिकने कागज़ पर छपी कई सचित्र अंग्रेज़ी पुस्तकें लेकर आए। उन्होंने उन पुस्तकों से याद कर लिया था कि प्रसव के दौरान पत्नी को अपने पति का सहारा कैसे देना चाहिए, पति को उसकी पीठ कहाँ सहलानी चाहिए, बच्चे के सिर को बाहर आते समय कैसे सहारा देना चाहिए और गर्भनाल कैसे काटनी चाहिए। उन पुस्तकों में मुस्कुराती और चंचल महिलाओं को प्रसव करते देखकर मुझे देवी जैसा महसूस हुआ।

हम, जो सरकारी अस्पतालों में काम करने के बाद डॉक्टर बन गए थे, अपने गाँव से बाहर नहीं निकल पाए थे। ‘भगवान का काम और नारियल का पानी; और नारियल का पानी, इसी तरह औरतें माँ बनती हैं’ हमारा आदर्श वाक्य था। सरकारी अस्पतालों में काम की भागदौड़ में दाइयाँ, चाचियाँ, नर्सें, डॉक्टर – किसी के मुँह से ज़बान नहीं निकलती थी। मरीज़ों के प्रति सम्मान और आदर का ज़िक्र तो सिर्फ़ विदेशी किताबों में ही मिलता था। यह एक दूर की बात थी। हमारे आस-पास कुछ भी नहीं था। सरकारी अस्पतालों में प्रसव से जुड़ी सभी तैयारियों और जाँचों के लिए एक विशेष शब्दकोश होता था। दाइयों और नर्सों के बोलने का तरीका ऐसा था कि कोई बाहरी व्यक्ति उसे देखकर चौंक जाता। अविश्वसनीय, अभद्र और शर्मनाक बातें चलती रहती थीं। एक बार जब मैंने स्त्री रोग विभाग में एक चाची से इस बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा, “मैं जानबूझकर

ऐसा कहती हूँ। उन महिलाओं के साथ पुरुष बाहर नहीं जाते।" उनका तर्क कितना सीधा था! प्रसव के लिए आने वाली महिलाओं के पति वहाँ के कर्मचारियों के लिए परेशानी का सबब थे। यहाँ तक कि उन महिलाओं को भी अपने पतियों को इस तरह बाहर ले जाने पर कोई आपत्ति नहीं थी। इसके विपरीत, प्रसू और उसके पति की अपेक्षाएं आसमान छू रही थीं।

जब कोई महिला प्रसव के लिए तैयार होती है, तो नर्सें स्त्री रोग विशेषज्ञ को सबसे पहले 'शेव प्रेप' (योनि की सफाई) का निर्देश देती हैं। दरअसल, बस 'S&P' जैसा एक नोट ही लिखा जाता है। बाकी सब कुछ नर्सों को पता होता है। एक बार, दाई ने मुझसे सीधे पूछा, 'इस बारे में आपके अस्पताल की क्या नीति है?' मैं अपनी कुर्सी पर बेचैन हो गई। क्या अस्पताल की ऐसी पूछताछ के लिए कोई नीति है? क्या यह कोई सवाल हो सकता है? क्या कोई महिला सीधे डॉक्टर से यह पूछ सकती है? यह सब मेरे लिए चौंकाने वाला था, लेकिन वह बेहद सहज थी। उसे लगा कि डॉक्टर से यह सब पूछना और पहले पता लगाना ज़रूरी है। उसे लगा कि यह उसका अधिकार है। लेकिन मैंने आज तक इस बारे में इस तरह कभी नहीं सोचा था। एक बार जब गर्भवती महिला अस्पताल में आती है और हम पर भरोसा करती है, तो क्या हम यही नहीं कहते? हम उसके शरीर को छेदेंगे, चीरेंगे, ट्यूब डालेंगे, सिलेंगे, चिपकाएंगे... हम जो चाहें करेंगे; हम जो करते हैं वह उसके भले के लिए है, है ना? फिर आपत्ति का सवाल ही कहाँ उठता है? पिछले पच्चीस वर्षों से महिलाएं मेरे क्लिनिक में आती रही हैं, मैं एसपी का आदेश लिखती हूं, बाकी सब काम नर्स करती है। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि कोई इस पर आपत्ति करेगा या कर सकता है; लेकिन मुझे उन्हें किसी न किसी तरह का जवाब देना ही था, इसलिए मैंने कहा, "जब टाकबेबी डालने का समय आएगा, तो सब ठीक हो जाएगा..." मेरा इशारा 'एपिसियोटॉमी' की ओर था।

उसका अगला सवाल तुरंत आया - "तो क्या आप प्रसव के दौरान योनि में छेद करती हैं?"

“हो.”

“नियमित रूप से?”

मैं आमतौर पर पहली खेप ले लेता हूँ।

"तो क्या आपकी भी यही नीति है?"

नीति फिर से!

फिर मैंने उन्हें समझाया- “महोदया, मेरा एक छोटा सा निजी क्लिनिक है। हर मामले के लिए मेरी कोई तय नीति नहीं है। हाँ, इतने सालों के अनुभव के साथ, मुझे और मेरे स्टाफ को पता है कि कब क्या करना है। हम आमतौर पर गलतियाँ नहीं करते। लेकिन अगर आप इसे नीति कह रही हैं, तो मैंने ऐसा कुछ कहीं लिखा नहीं है। अगर आप इसे एपिसियोटॉमी कह रही हैं, तो यह आमतौर पर की जाती है। क्योंकि तब तक महिला की हालत इतनी बिगड़ चुकी होती है कि उसे तुरंत आराम देना ज़रूरी होता है और...”

"नहीं, लेकिन मुझे ऐसा लग रहा है कि दवाइयाँ किसी प्राकृतिक चीज़ के लिए मेरे शरीर पर हमला कर रही हैं! मैं यह नहीं चाहती!" उसने बीच वाक्य में ही मुझे रोकते हुए कहा।

यह महिला सचमुच उस चीरे पर हमला कर रही थी जो समय से पहले प्रसव सुनिश्चित करने और आसपास के अंगों (गुदा, मूत्रमार्ग आदि) को नुकसान न पहुंचाने के नेक इरादे से लगाया गया

था! अब मुझे अपना रूप अलग नज़र आने लगा... मेरे आठ-दस हाथ टूटे हुए हैं; मैं कैंची, चाकू, ट्यूब, सुई, रस्सी और चिमटी लेकर इधर-उधर भागता रहता हूँ; मैं महिलाओं के शरीर में चीरा लगाता हूँ, तुरंत उसे सिल देता हूँ या फिर से इधर-उधर भागता रहता हूँ। मेरे अन्य डॉक्टर मित्र भी इसी भागदौड़ में लगे हुए हैं। कुछ मोतियाबिंद में चीरा लगा रहे हैं, तो कुछ आंत में!

बेशक, यह भी माना जाता है कि प्रसूति विज्ञान में एपिसियोटॉमी सर्जरी लगातार विवादों में घिरी रहती है। दोनों पक्षों के तर्क मौजूद हैं; लेकिन यह हम चिकित्सकों का निजी मामला है। इस महिला को इसमें दखल देने की क्या ज़रूरत थी? मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे चिकित्सकीय अहंकार को चुनौती दी जा रही हो।

खुद को शांत रखने की कोशिश करते हुए मैंने उसे समझाया, "अगर पहले पियर्सिंग नहीं करवाई तो इससे गंभीर नुकसान हो सकता है। बाद में टांके लगवाना बहुत दर्दनाक होता है... आसपास के अंगों को भी नुकसान पहुंचता है... अत्यधिक रक्तस्राव भी हो सकता है..."

"लेकिन अंतरराष्ट्रीय सिफारिश ऐसी नहीं है।" उसने हाथ में टैब लिए नाचते हुए कहा। फिर मैंने भी अपनी अलमारी से एक मोटी किताब निकाली और उसे संदर्भ दिखाया। वह किताब टैब से सौ गुना मोटी थी। पढ़ो, महोदया, पढ़ो! यह मत सोचो कि मुझे कुछ समझ नहीं आता!

अंततः, हम इस शर्त पर सहमत हो गए कि 'भले ही यह पहला बैच हो, इस चीरे से बचना चाहिए और अगर टाँके गलती से खुल जाएँ, तो ज़रूरत पड़ने पर मैं उन्हें बाद में सिल दूँगा।' अब अच्छे या बुरे, परिणामों की ज़िम्मेदारी उसकी थी। मैं शांत हो गया और पहली बार मुझे उसके गंभीर और ध्यानपूर्वक रवैये का दूसरा पहलू स्पष्ट रूप से समझ आया। पहली बार मेरे किसी मरीज़ ने जानबूझकर अपनी भलाई की ज़िम्मेदारी ली थी। 'देखिए डॉक्टर, अब मैं इसे आपके पास लाई हूँ, अब आप देखिए कि यह क्या है!' मैं ऐसी बातचीत का आदी था; उस पृष्ठभूमि में, यह शांति अलग थी। अब ईमानदारी से प्रयास करने की ज़िम्मेदारी उतनी ही मेरी भी थी। रास्ता चुनने की ज़िम्मेदारी प्रसूत की थी। वह भी शांत और खुश थी क्योंकि उसने अपने मन की तरह शांति पा ली थी। उसने अपने शरीर पर अपना अधिकार साबित कर दिया था, उसे सुरक्षित रखा था। मैंने भी इसे स्वीकार कर लिया था।

सिर्फ़ एपिसियोटॉमी ही नहीं, बल्कि हर चीज़ पर उनकी राय होती थी, हर विषय पर उनकी अपनी भूमिका होती थी। प्लेसेंटा में इंजेक्शन लगाना, पानी की थैली का स्वतः/जानबूझकर फटना, गर्भनाल काटने का सही समय, सीज़ेरियन, पहली बार स्तनपान, प्रोटीन पाउडर, बच्चे की पॉटी साफ़ करना, प्रसव के बाद माँ के कपड़े, शारीरिक स्वच्छता... हर चीज़ पर उनका अपना विचार होता था, और उससे जुड़ा एक तर्क भी। मैं उनकी ज़्यादातर राय से सहमत थी, कुछ राय कम से कम अस्वीकार्य नहीं थीं; लेकिन कुछ अव्यावहारिक थीं। एक छोटे से गाँव में छोटा सा अस्पताल होने के नाते, कुछ सीमाएँ तो होती ही हैं, और उनकी ये राय वहाँ लागू नहीं होती थीं। मैंने उनकी राय मान ली, उन्होंने मेरी। हम साथ-साथ चलने लगे।

प्रसव के दौरान महिला की स्थिति भी उनके लिए एक अहम मुद्दा था। उनके अनुसार, मेज पर पीठ के बल लेटकर बच्चे को जन्म देना प्राकृतिक प्रसव के विरुद्ध एक चिकित्सीय प्रक्रिया थी। दो पैरों पर, चारों हाथों-पैरों के बल (जैसे रेंगना) बच्चे को जन्म देना ही सच्चा प्राकृतिक प्रसव है।

उन्होंने मुझे जंगल में एक गोरिल्ला और एक चिंपैंजी का एक 'प्राकृतिक' वीडियो भी दिखाया जिसमें कुछ ऐसा ही होता दिख रहा था। ऐसा नहीं है कि उनकी बातों में सच्चाई नहीं थी। गांवों में घर पर बच्चे को जन्म देने वाली महिलाएं अपनी सुविधा के अनुसार ही बच्चे को जन्म देती हैं। फिर भी, मुझे उन्हें अस्पतालों में प्रचलित प्रक्रिया के बारे में बताना पड़ा। मैंने कहा, "मेज पर लेटने से जांच करना आसान होता है।"

"मैं यही तो कह रहा हूँ! तुम सब कुछ डॉक्टर की सुविधा के अनुसार करोगे! उस महिला की सुविधा के अनुसार..."

"यह मरीज के लिए भी सुविधाजनक है... आपको बच्चे की धड़कन देखनी होती है... और यह खारे पानी से भी भरा होता है..."

“नमकीन पानी?” वह चीख पड़ी।

नीति लागू होने से पहले, महिलाओं के शरीर पर चिकित्सीय हमले आदि फिर से शुरू हो गए थे। मैंने कहा, "महोदया, अगर रक्तस्राव हो रहा हो, तो बड़ी मुश्किल से सेलाइन सॉल्यूशन देना पड़ता है। तब सही समय पर गर्भाशय का सिरा नहीं मिल पाता। इसलिए बेहतर है कि इसे पहले से ही लगा दिया जाए।" लेकिन वह सहमत नहीं हुईं। सेलाइन सॉल्यूशन उनकी नीति के अनुरूप नहीं था।

एक तरफ तो वो बेहद खूबसूरत लग रही थी। उसका प्राकृतिक प्रसव उसके लिए ठीक था, लेकिन मुझे नहीं। अगर सब कुछ स्वाभाविक रूप से होना था और मैं यही चाहती थी, तो ये महिला मेरे पास आने की परेशानी क्यों उठा रही थी? अगर कुछ असामान्य होता, तो मैं ही दखल देती, और अगर सब कुछ स्वाभाविक रूप से होता, तो उसे ही सब कुछ करना पड़ता!

उसे प्रसव पीड़ा शुरू हो गई। उसने दर्द को सहन किया। उसने काफी समय घर पर बिताया। वह इधर-उधर घूमी, बैठी, सोई। जब दर्द असहनीय हो गया, तो वह अपने पति को अस्पताल ले गई। अस्पताल पहुँचते ही उसने तुरंत बच्चे को जन्म दिया! मैं राहत से बच गई! मेरे पति पास ही थे। उन्होंने गर्भनाल को उसी तरह काटा जैसे किसी बच्चे की गर्भनाल काटते हैं और वे बेहोश हो गए। उसने यह नहीं पढ़ा था कि पति के बेहोश होने पर क्या करना चाहिए। इसलिए, मैंने उन्हें होश में लाने के लिए हर संभव प्रयास किया। उसे टांके लगे। उसने मुझ पर मारपीट का आरोप लगाए बिना टांके लगवा लिए। सब ठीक होने तक वह चार दिन अस्पताल में रही और फिर उसने बिल का भुगतान किया।

उन्होंने मुझे मेरे अनुभव के आधार पर एक नया दृष्टिकोण भी दिया। मुझे लगता था कि मैंने जो सीखा और किया है, वह केवल रोगियों की देखभाल करना है; लेकिन उन्होंने मुझे एक वैकल्पिक दृष्टिकोण भी दिखाया। विदेशों में, उपचार में रोगी की भागीदारी बहुत महत्वपूर्ण होती है। हालांकि, हमारे देश में, रोगियों को हल्के में लिया जाता है। एक डॉक्टर के रूप में, हमें रोगी के शरीर पर अधिकार दिया जाता है। रोगी अपने दिमाग को चलाने का काम डॉक्टर को सौंप देते हैं। चिकित्सा जगत भी इसे आँख बंद करके अपने हाथ में ले लेता है। इसलिए, डॉक्टर की गर्दन पर हमेशा तलवार लटकी रहती है।

बेशक, यह कहते हुए कि मरीज़ को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल किया जाना चाहिए, एक

और बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ऐसे मामलों में, मरीज़ को भी माँ की तरह शिक्षित, जागरूक और अपने निर्णयों की पूरी ज़िम्मेदारी लेने वाली होनी चाहिए। साथ ही, डॉक्टर की टीम को प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। माँ के लिए प्रसव की बारीकियों पर चर्चा करना ठीक है। लेकिन अगर डॉक्टर ऐसी चर्चा के लिए कहता है, तो दस प्रतिशत काम भी नहीं हो पाएगा!

अब, जब भी मैं 'एस एंड पी' जैसा कोई नोट लिखती हूँ, मुझे प्रसूत प्रसूत की याद आ जाती है। यहाँ तक कि मेरे अभ्यास से भरे हाथ भी थोड़े काँपने लगते हैं और मैं सिस्टर्स को फोन करके कहती हूँ, "मरीज को बताएँ कि आप क्या करने जा रही हैं। उनसे पूछें और उसके बाद ही आगे का निर्णय लें।" मैंने वाकई बहुत प्रगति की है। और इसका सारा श्रेय प्रसूत को जाता है!

•

चफेकर बंधुओं

• मुझे पहली बार यह जानकर सांस्कृतिक झटका लगा कि चफेकर उपनाम वाले व्यक्ति का नाम दाऊद, बशीर या सलीम हो सकता है, और चफेकर के पिता का नाम रहीम हो सकता है।

दाऊद, बशीर और सलीम महाद के भाई हैं। उनके और अन्य लोगों की वजह से उस इलाके के कई लोग मेरे मरीज़ बने। उनमें से ज़्यादातर लोग नावों पर मज़दूरी करते थे। लेकिन चाफेकर भाई खास मरीज़ थे; क्योंकि वे मेरे खानदानी मरीज़ थे। मेरे पिता जनरल प्रैक्टिस करते थे। उस ज़माने की परंपरा के अनुसार, वे आँखों में मोतियाबिंद से लेकर एड़ी में काँटा निकालने तक, सभी ऑपरेशन अकेले ही करते थे। उस ज़माने में रहीम चाफेकर मेरे पिता के बहुत करीबी मरीज़ थे। बाद में, उनके बेटे, यानी ये चाफेकर भाई, मेरे मरीज़ बने।

"तुम्हारे पिता ने हमारे परिवार में सात लोगों को मार डाला है," उसने गर्व से मुझे मेरे पिता की प्रसिद्धि के बारे में बताया, और जब उसने सुना कि मैं अपने पिता की तरह 'सबके साथ व्यवहार' नहीं कर रही हूँ क्योंकि मैं एक 'पेशेवर' हूँ, तो उसे हंसी आई, लेकिन फिर भी उसने मुझे चेतावनी दी, "अगर मुझे कोई बीज मिला, तो मैं सबसे पहले तुम्हें बोऊँगा, लेकिन सांगशी के पास मैं बाद में जाऊँगा।"

जब महाद से यह परिवार सह्याद्री पर्वतमाला को पार करके मेरे अस्पताल में आता है, तो हर मंजिल पर भारी हलचल मच जाती है। वे नर्सों के आने पर उनका अभिवादन करते हुए पूछते हैं, "आप कैसी हैं?"

"अच्छा, अच्छा!" कहना उनके लिए जवाब से संतुष्ट होने के लिए काफी नहीं है।

“न्हवरा बेष हाय ना?”

“हो.”

और बच्चे?

वे अच्छे हैं।

“सासु बेस असां नां?”

“हो हो.”

"अभी भी ऐसे ही? अब कैसा लग रहा है?" चाफेकर एक पक्के मज़ाकिया इंसान हैं। ऐसा करते हुए, पूरे परिवार से पूछा गया, "डॉक्टर साहब, आप अभी खाना खाने क्यों चले गए?"

"नहीं वो हैं।"

"क्या तुम चले गए? ढाई बज गए हैं।"

फिर, मुझसे ‘अरे बाप रे, बाबा कैसे हैं?’ कहते हुए, वह मेरे केबिन में आ जाते। आना तो बस आना होता है। अंदर दूसरे मरीज़ हैं या नहीं, इसकी क्या परवाह? चाफेकर घर पर ही अस्पताल बन गए थे। “देखो, तुम नर्स से कहो कि कमरा ले ले। हम इतनी लंबी यात्रा करके आए हैं। हम जी रहे हैं और फिर तुम्हें दिखाएंगे। अगर तुम आओगे, तो हम देखेंगे, हम तुम्हारा ख्याल रखेंगे।”

उसके बाद, थोड़ी ही देर में अस्पताल के बाहर बने शेड से आटा, नमक और राशन लाया जाएगा। ढोल-नगाड़ों की आवाज़ गूंजने लगेगी। पके हुए नान और मसालेदार सूखे बमबिल की खुशबू पूरे

अस्पताल में फैल जाएगी। दूर से ही कोई भी पहचान जाएगा कि महाद से मरीज़ आ गए हैं!

वे आएंगे, अपने साथ सारा सामान लेकर। सभी भाइयों की पत्नियां, बच्चे, ससुराल वाले, साले, साली, सब। तीन भाइयों में से अब केवल दो ही बचे हैं। दोनों भाई अचानक चले गए।

मुझे याद है, एक दिन दाऊद चफेकर आए और फूट-फूटकर रोने लगे। मुझे कुछ समझ नहीं आया। काफी देर बाद जब उनकी तबीयत थोड़ी सुधरी, तो वे ठीक से बोलने लगे। उन्होंने कहा, "तीनों भाई एक ही नाव में थे। जब नाव कांगो बंदरगाह पर थी, तो दो भाइयों को बुखार आ गया। वहाँ के डॉक्टर ने उन्हें 'क्वारंटाइन' कर दिया।" उनका मतलब सचमुच 'क्वारंटाइन' था। बुखार प्लेग का था, इसलिए किसी को भी उनसे मिलने की इजाज़त नहीं थी। यात्रा जारी रही, बुखार भी जारी रहा। बाद में, जब उन्हें पता चला कि नाव में ऐसा एक मरीज है, तो उन्होंने नाव को मेडागास्कर बंदरगाह में प्रवेश नहीं करने दिया। कोई मदद पहुँचने से पहले ही, दोनों की मौत हो गई। नाव पर ही। उनकी पत्नी और पाँचों बच्चे देखते ही देखते मर गए। वे सदमे में थे। दोनों भाइयों के शव उनसे बरामद भी नहीं किए गए। उनके बीमार शरीर दूसरों के लिए खतरनाक हो सकते थे। नियमों के अनुसार, उन्हें एक सीलबंद बक्से में रखकर समुद्र में ही विसर्जित कर दिया गया। उन्होंने घर पर तार भेजा। जब तक टेलीग्राम पहुंचा, कंपनी का मुआवजा चेक घर पहुंच चुका था और परिवार जश्न मना रहा था, यह सोचकर कि यह पैसा किसी प्रकार का इनाम है।

जो कुछ हुआ था उससे वह बहुत थक गया था, लेकिन वह घर पर नहीं रुका। उसका और उसके दोनों भाइयों का जीवन धीरे-धीरे और चुपके से पटरी पर लौटता रहा। एक भाई ठीक था, बच्चे भी स्वस्थ थे। इसलिए उसने भी यही किया, नाव पर सवार होकर घर पैसे भेजने लगी। कुछ

महीनों में चाफेकर की स्थिति में नाटकीय बदलाव आने लगा। जब भी कोई बच्चा घर आता, उसकी जेब में पैसे आने लगते। फिर, बीमारी शुरू होने पर, पूरा परिवार एक साथ यात्रा पर निकल पड़ता, जैसे पिकनिक या इलाज के लिए।

आते ही वे तुरंत उत्सुक हो जाते हैं। इतने उत्सुक कि सवाल पूछने की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती। अंतरंगता जैसी कोई बात नहीं होती। सारे सवाल खुलेआम पूछे जाते हैं। जैसे ही कोई नई बहन आती है, वे उसे चिढ़ाने लगते हैं।

"आप कब शादी कर रहे हैं?"

"तीन साल।"

"कितने बच्चों है?"

"दो।"

“लड़के?”

"दो।"

“दोनों बेटे?”

“हो.”

"क्या यह लड़की नहीं है?"

"नहीं।"

"नहीं? आप ऐसा कैसे कर सकते हैं? अपने भाई को मत बताना? आपका ऑपरेशन हुआ है?"

चफेकर को इस तरह पूछताछ करने के लिए किसी बहन की ज़रूरत नहीं है। पहली मुलाकात में उन्होंने मेरी पत्नी से भी यही सवाल पूछे थे। विदाई समारोह में भी वही स्नेह बरता जाएगा। मैं, बहन, चाची, सफाईकर्मी, सब कहेंगे, 'हाँ, हम आ रहे हैं, आइए, याद रखिए!' पति मुझसे कहेगा, "अब तुम्हारा मुखिया दूसरी बार तुम्हारी पत्नी को पीटेगा! एक बार तुम्हारा मुखिया तुम्हें पीट चुका है, तो वो ठीक रहेगी। पिछली बार तुमने अपनी बेटी को पीटा था, वो अब ठीक रहेगी। तुमने अपनी सास को पीटा, वो ठीक रहेगी। अब तुम अपनी पत्नी को पीट रहे हो, क्या हुआ! आओ, आओ। अगर तुम अपनी पत्नी को पीटते हो, तो उसकी अच्छी तरह से जाँच कर लेना।" अब मुझे समझ आ गया है कि पीटने का मतलब उसे लाना है।

मेरा अस्पताल उनके लिए सिर्फ़ एक अस्पताल नहीं था, बल्कि एक लॉजिंग-बोर्डिंग भी था। जब कोई मरीज़ भर्ती होता, तो दस-पंद्रह लोगों का पूरा परिवार वहीं ठहरता था। मैं यहाँ मरीज़ की हर ज़रूरत पूरी करता और वे वहाँ फ़िल्म देखते; मैं चार-पाँच बोरी सब्ज़ियाँ खरीदता; बाज़ार से हर तरह का सामान लाता, यहाँ तक कि केरुसुनी भी खरीदता। शुरुआत में आने वाले रिश्तेदार मौज-मस्ती करके लौट जाते। फिर अगले दिन दूसरा समूह आता। वे भी तरह-तरह की असली और नकली बीमारियों और शिकायतों से परेशान होते। कुछ लोग तनाव में होते, कुछ को सिरदर्द होता, तो कुछ के पूरे शरीर पर सफ़ेद 'छाले' निकले होते! मेरे सामने रखी उस किताब को पढ़कर मैं जल्दबाज़ी में सारी दवाइयाँ लिख देता। मैं उनसे जल्दबाज़ी में जाँच करवाने को कहता। अगर कोई कहता कि उसे जाँच नहीं करवानी, तो मुझे बहुत दुख होता। वह बलगम की जाँच करवाने के लिए आगे जाता। अगर बलगम की जाँच करवाने को कहा जाता, तो वह बचा हुआ बलगम भी

निगलने को तैयार हो जाता। मेले में फोटो खिंचते ही वो तुरंत एक्स-रे करवाएगा, वो एक्स-रे और सोनोग्राफी भी करेगा। अगर इससे कुछ भी पता चलता है, तो उस व्यक्ति की तारीफ कौन करेगा! वो रिपोर्ट ऐसे देगा जैसे उसे कोई पदक, ढाल या राजदंड दिया जा रहा हो। वो उस व्यक्ति की पूरे दिल से देखभाल करेगा। वो उससे करुणा भरे शब्दों में सवाल करेगा। वो मामूली बीमारी को भी ऐसे देखेगा जैसे वो मर रहा हो। उसकी हर इच्छा उसकी आखिरी इच्छा जैसी होगी। वो अपने हर शब्द को दिल में दबाकर रखेगा। वो हर काम पूरे स्नेह और प्रेम से करेगा।

चाफेकर और उनकी पत्नी की हलचल पर नज़र रखनी चाहिए। अपने भारी-भरकम शरीर को घूंघट से ढके हुए, यह महिला सबको चौंका देती थी। कद-काठी में वह अपनी पत्नी से बिलकुल अलग थीं। अंगयष्टि का शाब्दिक अर्थ है लाठी। एक लंबी, पतली भुजा। घूंघट में लिपटी अपनी गोल-मटोल पत्नी के सामने चाफेकर एक ढोलके जैसे लग रहे थे। उनका रूप-रंग सूट पहने किसी आदमी जैसा था। लंबी साड़ी, पतलून, पजामा या लुंगी, जैकेट, गोल टोपी, कंधों पर एक चौकोर रुमाल और बिना मूंछों वाली बड़ी दाढ़ी - ऐसा पहनावा किसी भी खान के लिए उपयुक्त होता; लेकिन उनका रूप-रंग बिल्कुल चाफेकर जैसा था - गोरा, सुंदर, लंबा, और नाक वाला। उनकी आवाज़ बहुत कोमल, जीवंत और मीठी थी। ऐसी मधुर आवाज़ में उन्होंने डॉक्टर की प्रशंसा करना शुरू किया, मैं उसका वर्णन कैसे करूँ!

“मैं लंदन में था और मेरे पेट में दर्द हो रहा था। नाव पर मौजूद डॉक्टर ने कहा, मुझे ऑपरेशन करवाना पड़ेगा। मेरे अपेंडिक्स में कीड़ा है। क्या आपने उसे नहीं निकाला? वहीं से नाव गेट पर रुकी और मुझे वहाँ ले जाया गया। बस! मैंने कहा, ऑपरेशन करवाने का कोई फायदा नहीं, मुझे छोड़ दो। मैं अपने घर अबिकर चला जाऊंगा। अगर उन्होंने गाना गाया है, तो यह सच है। जब नाव पहुँची, तो मंगशी ने पूछा, क्या आप कंपनी के अस्पताल गए थे? क्या आप तुरंत यहाँ नहीं आए थे? अब आपको ही अपेंडिक्स काटना पड़ेगा।”

यह कहते हुए वह मुस्कुराते और थैले से विदेश से आया उपहार निकालते। यह पुराने ज़माने की बात थी। आयातित कपड़े भी उन्हें पसंद आते थे। एक बार उन्होंने मुझे एक लुंगी दी। बारीक बुने हुए टेरी कपड़े की लुंगी। आयातित! उस पर एक शानदार मोर छपा हुआ था। लाल, पीला, बैंगनी, हरा और नीला जैसे सात गहरे रंगों में छपे वे मोर अब असहनीय हो गए थे और मानो आँखें बंद करके कह रहे हों, 'बस बहुत हो गया।'

जब चाफेकर बंधुओं ने सप्तसागर नदी पार की, तो मुझे हमारे कुसुमाग्रज की याद आ गई-

"हमारा मार्ग न तो धन से अवरुद्ध हो सकता है, न दरवाजों से, न घरों से, न हमारी संपत्ति के धन से..."

हम नाविक, केवल सात आकाशों के नीचे ही यात्रा करते हैं, और आगे नए क्षितिज का निर्माण करते हैं।

लेकिन फिर उदासी छा जाती है। उन्हें रोकने के लिए पैसा कहाँ से आएगा? अगर थोड़ा-बहुत है भी, तो बस एक धान का खेत; वो भी सबकी साझा ज़मीन पर, और कुछ मुर्गियाँ। बस यही उनकी दौलत है। दौलत तो समुद्र में, नाव पर कड़ी मेहनत करके ही आएगी। घर का काम भी बहुत है, मतलब सचमुच बहुत ज़्यादा। अगर इसमें ये भी जोड़ दें, तो सारा बोझ नाव पर काम

करने वाले के घर पर ही पड़ेगा। ऐसा लगता है जैसे घर का कोई दरवाज़ा ही नहीं है। पति छह महीने समुद्र में रहता है, फिर कुछ महीने घर पर, या फिर वापस नाव पर। उनमें से ज़्यादातर को संतानोत्पत्ति की समस्या है। बीमारी की वजह से नहीं, बल्कि साथी की कमी की वजह से। आसमान के नीचे यात्रा करने के बावजूद, उनकी किस्मत में कोई नया अध्याय लिखना नहीं लिखा है। ये कोलंबस नहीं हैं। ये हमारे मज़दूर हैं। गुमनाम मज़दूर। कोलंबस की नाव पर भी कुछ मज़दूर रहे होंगे! हमें उनके नाम कैसे पता!

लेकिन दाऊद चाफेकर कोलंबस तो नहीं हैं, पर उनके घर में कोलंबस मौजूद है। वे अपनी पत्नी (उनके शब्दों में, 'मगारिनी') को कोलंबस कहा करते थे। वजह यह थी कि उन्हें हमेशा कुछ कमी सी महसूस होती थी और वे हमेशा कुछ न कुछ खोजती रहती थीं। यहाँ तक कि हाथ में रखी दवा भी उन्हें तुरंत नहीं मिलती थी। मुझे लगता था कि वे अपने घूंघट में भी खो जाएँगी। उस पट्टी से दिखने वाली उनकी आँखों की 'दो चिड़ियों' जैसी आकृतियाँ भी हमेशा खोई हुई सी लगती थीं। लेकिन वे कोलंबस से ज़्यादा एक जहाज़ जैसी थीं। वे घूंघट में लिपटे अपने शरीर का भार एक पैर से दूसरे पैर पर बदलते हुए संतुलित करती थीं और दूर से देखने पर वे किसी जहाज़ जैसी लगती थीं।

बायको नामक इस जहाज का पड़ाव चाफेकर था। एक बार यह दंपत्ति, और हैरानी की बात यह है कि केवल वही दंपत्ति आए, और चाफेकर दबी आवाज़ में बात करने लगीं। मुझे पता चला कि चाफेकर का महाद में कोई ऑपरेशन हुआ था और उन्हें वह बिल्कुल पसंद नहीं आया। उन्हें पूरा यकीन था कि मेरी सलाह के बिना किया गया ऑपरेशन ज़रूर गलत हो गया होगा। इसलिए वह आज खास तौर पर उस समस्या को सुलझाने के लिए चाफेकर को यहाँ लाई थीं।

"चाफेकर, किस तरह का ऑपरेशन किया गया था?"

"हालाँकि, दुर्घटना थी ना? पिस्तौल की वजह से हुई थी!" चाफेकर ने राहत भरी आवाज़ में कहा।

"कैसे?" मैं थोड़ा शरमा गई।

“पिस्तौल।” चफेकर चुप रहे। अलग-अलग लोग आते हैं, उनकी भाषा अलग होती है, और उनमें से कुछ के पास बहुत ही खास और अनोखे शब्द होते हैं। लेकिन लाख कोशिश करने के बावजूद, मुझे यकीन नहीं हो रहा था कि चिपाड़ा जैसा आदमी अपने अंग को पिस्तौल कहेगा। मतलब, मुझे उनके ऐसा कहने से कोई आपत्ति नहीं थी। कुछ और क्यों न कहें, पिस्तौल तो छोड़ो, राइफल या तोप भी ठीक रहता। लेकिन मुझे हंसी आ रही थी। मैं अपनी हंसी रोक नहीं पा रहा था। लाख कोशिश करने के बावजूद, मैं हंसना नहीं चाहता था, यह एक अजीबोगरीब पेशेवर दांव था। इसलिए मैंने अपने चेहरे पर भावहीनता बनाए रखने की पूरी कोशिश की। लेकिन मुझे डर था कि मैं फूट-फूट कर हंस न दूं। आखिरकार, अपनी हंसी रोकने के लिए, मैंने अगला सवाल पूछा, “ऑपरेशन कहां हुआ था?”

“हम महर्षि बन गए हैं। देश के चेहरे का वो बेटा आ गया है,” उसने कहा, “और वो क्रोधित होकर जन्म दे चुका है। मैं इसे यहीं निगल लूँगा; पर मैं क्या करूँ? बारिश हो रही है। हमारी गाड़ियाँ यहाँ फँसी हुई हैं, घाटी गड्ढों से भरी है और मैं बारिश से थक गया हूँ। मैंने उसे एक प्रहार किया। पिस्तौल की आग इतनी तेज़ है... यह दुश्मन के लिए कोई खतरा नहीं होगी!” यह कहकर वह

मुड़ा और अपनी बगल की ओर उंगली से इशारा करते हुए बोला, “एक दिशा में पिस्तौल से पानी निकलने लगा है।”

पता नहीं, उसकी पिस्तौल कहाँ गई? खैर, अगर उसमें कुछ गड़बड़ है तो वो चार बेटों और उतनी ही बेटियों का बाप है!

“बताओ, चफेकर, पानी कहाँ से आया? किस तरह का ऑपरेशन था?” मैंने फिर पूछा।

"क्या तुमने मुझे यह नहीं बताया था कि पिस्तौल से पानी रिस रहा था, या पिस्तौल चलाई गई थी!"

अचानक मेरी नली में आग लग गई। उनका मतलब 'पिस्टुला' था, जिसका अर्थ 'फिस्टुला' होता है! मैं बेहोश हो गया। जब मैंने उनकी जांच की और उन्हें बताया कि ऑपरेशन सफल रहा, तो वे मेरे पैरों पर गिरने लगे। किसी और द्वारा किए गए ऑपरेशन का प्रमाण पत्र पाने के लिए मेरे पैरों पर गिरना कुछ ज्यादा ही था। लेकिन चाफेकर सुनने को तैयार नहीं थे। मेरी सलाह के बिना ऑपरेशन करने का पाप उनके मन पर भारी पड़ रहा था।

वे भावुक तो थे ही, साथ ही सच्चे भक्त भी। इतने सच्चे कि वे कुछ भी नहीं मांगते थे। उन्हें दिन में पांच बार नमाज़ पढ़नी होती थी, कुरान पढ़ना होता था, लगातार चित्रों को देखना होता था और जप करना होता था। टोपी और दाढ़ी रखना उनके लिए अनिवार्य था। लेकिन केवल अल्लाह पर ही बोझ न डालने के लिए, वे हर जगह देवी-देवताओं की पूजा करते थे। जब वे वाइला आते, तो ढोल्या गणपति के दर्शन करते। यदि कृष्णाबाई का उत्सव चल रहा होता, तो वे एक बार उनके दर्शन भी करते। वे घाटी में स्थित पीर, सुल्तानपुर की मस्जिद और निमजग्या के दिन दरगाह जाकर एक छोटी तीर्थयात्रा पूरी करते थे। यदि कोई उन्हें प्रसाद देता, तो वे उसे पूरी श्रद्धा से आंखें बंद करके और प्रार्थना करते हुए ग्रहण करते थे। उन्हें हर जगह देवी-देवता दिखाई देते थे। वे रास्ते में स्थित अंबर के वृक्ष को, लाल पत्थर को, वृक्ष के नीचे स्थित मारुति को प्रणाम करते थे। वे समुद्र की शपथ लेते हुए कहते, 'समुद्र की शपथ!' उनके देवी-देवताओं की संख्या तैंतीस करोड़ से अधिक थी।

एक बार उन्हें सीटी स्कैन करवाना पड़ा। उन्होंने मुझसे कहा, “दागदार, तुम मेरे पास आओगे, मुझे डर लग रहा है।” मैं गया। वे बाहर इंतज़ार कर रहे थे। मैंने उन्हें पहली नज़र में पहचाना नहीं। फटे-पुराने अस्पताल के कपड़ों में। टोपी नहीं थी। एक हाथ में पेशाब की थैली और दूसरे हाथ में बालों को साफ करने वाली फाइल थी। किसी तरह चप्पलों को रगड़ते और कपड़े पहनते हुए वे मशीन तक पहुँचे। उन्हें यह बताने के लिए कि उस टेबल पर कैसे लेटना है, मैंने उनसे कहा, “जी चाफेकर, आपको अपना सिर यहाँ रखना चाहिए।” उन्होंने चुपचाप अपनी चप्पलें उतारीं, मुझे फाइल और पेशाब की थैली पकड़ने के लिए दी, कपड़े पहने और आँखें बंद करके, हाथ जोड़कर, बड़े श्रद्धा से अपना सिर मशीन पर रख दिया।

“चाफेकर, अपना सिर यहाँ रखो। मेरा मतलब नमस्कार कहना नहीं है, बल्कि अपना सिर यहाँ रखकर सोना है।” मैंने समझाया।

सीटी स्कैन के दौरान चाफेकर बीमारी से उबर गए और कुछ ही महीनों में अपनी भतीजी को उसकी शादी में आमंत्रित करने आ गए। “हाँ, दगदार, हम गरीब हैं, लेकिन हम शादी में जरूर

आएंगे।"

उन्होंने मेरे हाथ में उर्दू और हिंदी की एक पत्रिका थमा दी, जिस पर काबा, चांद, 786 और ऊंट की तस्वीर छपी थी। मैं स्वेच्छा से वहां गया। वहां से गुजरते हुए उन्होंने मुझे एक तरफ ले जाकर गंगाजल की एक सीलबंद बोतल दी। हाल ही में वे गांव के एक शेतजी के साथ ड्राइवर बनकर काशी गए थे। उन्होंने वहीं शेतजी के साथ अपने दोनों भाइयों का श्राद्ध भी किया था! मेरे चेहरे के भाव देखकर उन्होंने तुरंत समझाया, "तुमने शवों को घाटी में फेंक दिया था, है ना? मंगशी में दिन कैसे बिताते? हित्या मुल्ला को वहां ठीक से रहना नहीं आता था। उन्होंने किसी तरह का अर्दिवत कर दिया था। मेरा मन नहीं भरा। काशी कैसे, मैं तो उनके साथ सामंजस्य में था। मैंने कहा, मैं फिर से दिन बिताऊंगा। मैंने बोतल जला ली। गुरुजी ने कहा, अब मैं मुक्त हो गया हूं। उसी गुरुजी ने मुझे यह बोतल दी। ठीक है।"

मैं सोच रहा था कि काशी में किए गए उनके दुस्साहस के लिए मुक्त हुए चाफेकर बंधुओं की आत्माएं अब स्वर्ग जाएंगी या नरक। इसी बीच, शादी का दिन आ गया था।

शादी एक खास अवसर था। स्वागत समारोह के लिए दरवाजे पर केले के पेड़ लगाए गए थे। दूल्हा और दुल्हन हल्दी रंग के वस्त्र पहने हुए थे। मंगलसूत्र पहनाया गया, जूते बांधने की रस्म हुई, 'कबूल, कबूल, कबूल' गाया गया और निश्चित रूप से एक भावपूर्ण विदाई भी हुई।

यह स्पष्ट था कि चाफेकर के कुछ पूर्वजों ने किसी परिस्थितिवश इस्लाम धर्म अपना लिया था। मैंने सोचा कि मुझे उनसे पूछना चाहिए, 'आपका उपनाम स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि आप मूल रूप से हिंदू हैं; तो फिर आप हिंदू नामों के बजाय 'दाऊद रहीम', 'बशीर रहीम' या 'सलीम रहीम' जैसे नामों का उपयोग करना क्यों उचित नहीं समझते?' लेकिन ज़ाहिर है, मैंने यह सवाल नहीं पूछा। यह वह व्यक्ति था जो पेड़ों, फूलों, पत्थरों, समुद्र और सीटी स्कैन मशीनों में ईश्वर को देखता था, जिसने गंगा के किनारे मोक्ष की तलाश की थी। मैं उसे परेशान नहीं करना चाहता था। वह अपने आप में खुश था। चाहे वह 'दामोदर हरि' होता या 'दाऊद रहीम', इससे उसके जीवन में कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरे जीवन में भी कोई फर्क नहीं पड़ता। वह सह्याद्री पर्वतमाला पार करके अबिनकरों पर अपना दावा करने आता रहता, और मैं सह्याद्री पर्वतमाला पार करके उसके पास जाता रहता।

•

सैयद गलाह

• ये सैयद गलाह कौन है, जो अचानक मेरी कक्षा, मेरे बैच में शामिल हो गया और एक अच्छा दोस्त बन गया, सब कुछ थोड़ा अलग तरीके से हुआ।

...और अब हर दिन युद्ध, शरणार्थियों, यातना शिविरों, क्रांति और प्रतिक्रांति की खबरें आती हैं। हर दिन टीवी पर तस्वीरें दिखाई देती हैं, अखबारों में बड़ी-बड़ी तस्वीरें छपती हैं; युद्ध में मारे गए लोगों की, मारने वालों की, मरने वालों की, मरने के लिए तैयार लोगों की। और वे सभी जिंदगियां जो मौत के मुंह में कतार में खड़ी थीं। यह सब देखकर मुझे हर दिन सैय्यद की याद आती है। मैंने उनके परिवार से सिर्फ उन्हीं के अलावा किसी से मुलाकात नहीं की है, फिर भी, जब मैं किसी युद्धग्रस्त व्यक्ति, परिवार, देश आदि के बारे में सोचता हूँ, तो अपने आप ही सैय्यद, उनके परिवार और देश का ख्याल मेरे मन में आ जाता है।

वह अफगानिस्तान से थे। उन्होंने मेडिकल कॉलेज के पहले वर्ष में मेरी कक्षा में दाखिला लिया। उन्हें हिंदी या अंग्रेजी का कोई ज्ञान नहीं था। उनका प्रवेश एक अंतरराष्ट्रीय मामला था। उनके पिता दिल्ली में अफगान दूतावास में एक बड़े अधिकारी थे। वे अफगान कम्युनिस्ट पार्टी के एक प्रमुख नेता थे। सैयद स्कूल के दौरान रूस भी गए थे... पढ़ाई के लिए, सैन्य प्रशिक्षण के लिए और कम्युनिस्ट बनने के लिए। उन्हें बंदूकें, बम आदि चलाने की तकनीक आती थी। वे रूसी और पश्तो भाषा जानते थे। अपने पिता के दिल्ली तबादले के बाद वे दिल्ली आए। रूस ने अभी-अभी अफगानिस्तान में जनता की इच्छा के विरुद्ध सेना भेजी थी। रूस ने पूछा, 'अफगानिस्तान में क्रांति हो गई है, इसका हमारा समाधान क्या है?' और अमेरिका ने शेखी बघारते हुए कहा, 'हमने ऐसी छप्पन क्रांतियां देखी हैं। हम जानते हैं कि ऐसी क्रांतियों से कैसे निपटना है।' लेकिन रूस के अंतरराष्ट्रीय अहंकार के सामने भारत में 'बकवास' कहने का साहस नहीं था। इसके विपरीत, भारत की नीति अफगान सरकार को मान्यता देना, उसकी सभी संस्थागत संरचनाओं का समर्थन करना और बदले में पाकिस्तान का समर्थन करना थी। इसी से स्वाभाविक रूप से भारत में अफ़गान अधिकारियों की सभी ज़रूरतों का ख्याल रखने का दायित्व उत्पन्न हुआ। फिर इसमें उनके बच्चों और उनकी शिक्षा का ध्यान रखना भी शामिल हो गया। और जैसा कि अपेक्षित था, सैयद मेरी कक्षा में शामिल हो गया। जब उसे पुणे के कॉलेज जाने के लिए कहा गया, तो उसने दिल्ली में दो महीने के लिए अंग्रेजी की कक्षा शुरू की।

कॉलेज के पहले दिन उन्होंने मुझसे कहा, "इसे अपने कमरे में ही छोड़ दो।"

"कमरा कहाँ है?"

उसने स्टेशन के पास स्थित मशहूर पांच सितारा होटल का नाम तक बता दिया। मैं दंग रह गया। वह पिछले पंद्रह दिनों से उसी होटल में रुका हुआ था, जहाँ हम लाल कालीन पर चलने के लिए तरसते थे, जहाँ हम चौकीदार की घुंघराली मूंछों का मज़ाक उड़ाते थे। कॉलेज शुरू होने तक यही व्यवस्था थी। वह जल्द ही हॉस्टल में जाने वाला था।

तो वह चार दिनों के भीतर हॉस्टल पहुँच गया। वह होटल कहाँ था और हमारा हॉस्टल कहाँ! लेकिन सैयद ने ज़रा भी नाराज़गी नहीं दिखाई। वह बड़ी आसानी से हॉस्टल के माहौल में ढल

गया। वह असुविधाओं और कठिनाइयों में भी खो गया। उसकी सहनशीलता अद्भुत थी।
उसका कमरा ई-ब्लॉक की सबसे ऊपरी मंज़िल पर था; लेकिन वो मेरे कमरे में ही रहता था। सुबह जॉगिंग, फिर डी-ब्लॉक के सामने चाय; फिर लेक्चर, क्लीनिक, टिफिन, टिफिन; शाम को वॉलीबॉल, फुटबॉल; रात को टिफिन, जर्नल पूरा करना, सामान्य ज्ञान की बातें... और फिर दौड़। हर रात हॉस्टल के सामने वाली खाली गली में दौड़ होती थी। हर रात सैय्यद जीतता था, हर रात रबड़ी पीता था और सिर्फ सोने के लिए अपने कमरे में जाता था। धीरे-धीरे हम पक्के दोस्त बन गए, बिल्कुल रबड़ी की तरह।
एक बार उन्होंने मुझे अपनी बैंक पासबुक दिखाई। उसमें लिखी रकम देखकर मेरी आंखें फटी रह गईं। 'आपने बचत खाते में इतनी बड़ी रकम क्यों रखी है?' जब मैंने उनसे पूछा, तो उन्होंने बताया कि मेरे पिता ने अगले पांच वर्षों के लिए यह पैसा भेजा था। फिर हम दोनों बैंक मैनेजर से मिले और हमने फिक्स्ड डिपॉजिट (एफडीए) आदि करवाए। इतनी बड़ी रकम तुरंत जमा होते देख मैनेजर खुश हो गए। लेकिन हमारी उम्र, हमारी कहानी और रकम मेल नहीं खा रही थी। काबुल, दिल्ली, कॉलेज, पुणे, सैयद, अंग्रेजी नहीं जानता... वह काफी देर तक बड़बड़ाते रहे। उन्हें तरह-तरह के संदेह होने लगे। उसी समय, सैयद ने अपना राजनयिक पासपोर्ट दिखाया। पहले तो मैनेजर को उसमें कुछ भी अजीब नहीं लगा; लेकिन उन्होंने अंदर केबिन से किसी को बुलाया और उन्हें उस पासपोर्ट का महत्व समझ में आ गया। उन्होंने तुरंत तय किया कि वे सैयद की कितनी और कैसे मदद करेंगे। उन्होंने चाय और बिस्कुट मंगवाए और बाद में कमरे में आकर एफडी की रसीदें दीं। कमरे की हालत और अंदर बैठे सैयद को देखकर उन्हें हम पर फिर से शक हो गया होगा।
जब कॉलेज शुरू हुआ, तब रूस ने अफ़गानिस्तान से अपनी सेना वापस बुलाना शुरू ही किया था। समर्थन वापस लेते ही नजीब की सरकार अस्थिर हो गई। वहाँ एक भीषण गृहयुद्ध छिड़ गया। कोई किसी का साथ नहीं दे रहा था। मसूद की सेना, जिसे चीन और अमेरिका का समर्थन प्राप्त था, पाकिस्तान के प्रमुख नेता हिकमतयार और अरबों के समर्थन से लड़ने वाले हक्कानी, सभी नजीब सरकार के खिलाफ लड़ रहे थे। समय मिलने पर वे आपस में भी लड़ते। यह सब 'टाइम्स' या 'एक्सप्रेस' में छपने वाली लंबी-लंबी खबरों से पता चल जाता था। सैयद अपने वतन की खबरें जानने के लिए बेताब था। लेकिन कोई रास्ता नहीं था। फिर एक दिन मैं उसे ब्रिटिश काउंसिल की लाइब्रेरी ले गया। वहाँ के अंतरराष्ट्रीय अखबारों में यहाँ से थोड़ी ज़्यादा जानकारी थी। लेकिन वे अखबार ब्रिटिश समर्थित थे और उनमें छपी खबरें विद्रोहियों के पक्ष में थीं। राष्ट्रपति नजीब को हमेशा 'नाममात्र का राष्ट्रपति' कहा जाता था। धीरे-धीरे नजीब सरकार का पतन स्पष्ट हो गया। 'क्रूर', 'अज्ञानी', 'रूस की हथेली से पानी पीने वाली' सरकार की निंदा स्पष्ट हो गई। खबरें भी परेशान करने वाली थीं और उनमें इस्तेमाल की गई भाषा भी कष्टदायक थी। फिर धीरे-धीरे ब्रिटिश काउंसिल की बैठकें बंद हो गईं। अब टीवी पर सिर्फ प्रणब रॉय का 'द वर्ल्ड दिस वीक' कार्यक्रम ही बचा था। अफगानिस्तान में कुछ भी अच्छा नहीं हो रहा था। हर हफ्ते, इतनी बकवास सुनने के बाद, खालमाने सैयद रूम लौट आते थे। लेकिन नजीब अड़ियल थे। रूस ने उन्हें रास्ते में बहुत सारे हथियार दिए थे। इसी आधार पर वह सरकार मजबूत थी।

प्रथम वर्ष की परीक्षाएं नजदीक आ रही थीं। जलालाबाद में काफी अफरा-तफरी मची हुई थी। विद्रोहियों ने पूरी ताकत से हमला कर दिया था। सैयद हताश होते जा रहे थे।

परीक्षा से पहले उसने मुझसे पूछा, "अगर मैं फेल हो गया तो क्या होगा? क्या हम फिर भी दोस्त रहेंगे?" उसके चेहरे पर चिंता साफ झलक रही थी।

“बिल्कुल!” यह मेरा लापरवाही भरा जवाब था।

अरे बाप रे! मुझे लगा था कि तुम कहोगे, सैयद, तुम कैसे फेल हो सकते हो? तुम पास हो जाओगे!

वह आश्वस्त होना चाहता था कि वह असफल नहीं होगा; लेकिन उसके लिए पास होना असंभव था। पहला साल अंग्रेजी सीखने में बीता। उसने अंग्रेजी पर अच्छी पकड़ बनानी शुरू ही की थी। अब परीक्षा अगले छह महीनों में थी। डेढ़ साल का पूरा पाठ्यक्रम निर्धारित था। सिर्फ अंग्रेजी के अच्छे ज्ञान के बल पर डेढ़ साल का पाठ्यक्रम पढ़ना और समझना तथा आत्मविश्वास के साथ परीक्षा देना असंभव था। लेकिन सैयद मुझसे आश्वस्त करने वाला जवाब चाहता था। यह उसका अधिकार था और मेरा कर्तव्य। मैं उसे आत्मविश्वास कहाँ से देता? यहाँ अच्छे लोग दुविधा में थे; लेकिन मेरे जवाब से उसे बहुत दुख हुआ। हालांकि, नजीब ने अप्रत्याशित रूप से जलालाबाद की लड़ाई जीत ली और सैयद खुश हो गया। उस उत्साह में उसने पूरे आत्मविश्वास के साथ परीक्षा दी; लेकिन फिर भी वह पहले साल में ही अटक गया।

पहले साल में फेल होने वाले बच्चे छह महीने बाद दोबारा परीक्षा दे सकते हैं। परीक्षा पास करने के बाद ही उनका दूसरा साल शुरू होता है। इस बैच को 'विषम बैच' कहा जाता है। विषम बैच में जाने के बाद दोस्तों का साथ अपने आप ही टूट जाता है। क्योंकि कक्षाओं, प्रैक्टिकल, क्लीनिक और परीक्षाओं का समय कभी मेल नहीं खाता। मिलना-जुलना, साथ खेलना, पढ़ाई करना और मौज-मस्ती करना भी धीरे-धीरे कम होता जाता है। इसके अलावा, नियमित बैच का घमंड और विषम बैच के छात्रों की हीन भावना बची-खुची दोस्ती को भी लगभग खत्म कर देती है। सैयद उम्मीद के मुताबिक विषम बैच में गया; फिर भी हमारी दोस्ती फीकी नहीं पड़ी।

प्रथम वर्ष के परिणाम घोषित होने के दिन ही कुख्यात जर्मन दीवार ढह गई। सैय्यद की बड़ी बहन पूर्वी जर्मनी में थी। उसका पति अहमद वहाँ अफ़ग़ान दूतावास में अधिकारी था। वह कभी-कभी उसे उसकी और उसके चार प्यारे बच्चों की तस्वीरें दिखाता था। उसकी बहन ने बुर्का नहीं पहना था, बल्कि चेहरे पर रुमाल बाँधा हुआ था। सैय्यद कह रहा था कि अब उसकी बहन और उसके परिवार के लिए जर्मनी में रहना नामुमकिन है। वहाँ जर्मन कम्युनिस्टों को स्वीकार किया जाता था, लेकिन विदेशी कम्युनिस्टों को बिल्कुल नहीं।

ऐसा ही हुआ। एक महीने के भीतर, सैय्यद आँखों में आँसू लिए कमरे में आया। पूर्वी जर्मनी के कट्टरपंथी कम्युनिस्ट दीवार गिराने के खिलाफ थे। अहमद ऐसे ही एक समूह की गुप्त बैठक में गया था। विपक्षी समूह के लोग भी वहाँ आ गए। उन्होंने बातचीत की। मामला गरमा गया। इस अहंकारी अफगान ने अपनी जेब से पिस्तौल निकाली। जल्दबाजी में किसी और ने पिस्तौल छीन ली और पहली गोली उसी पर चला दी। बाद में, पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी का एकीकरण हो गया। सैय्यद की बहन और उसके बच्चे जर्मनी छोड़कर पोलैंड होते हुए फ्रांस में शरण लेने चले गए,

लेकिन इस बारे में किसी को ज्यादा जानकारी नहीं थी।

बाद में, अफ़गानिस्तान में युद्ध छिड़ गया। तालिबान वहाँ सत्ता में आ गया। नजीब को कार के पीछे बाँधकर सड़क पर घसीटा गया ताकि उसे मार डाला जाए। उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए। नजीब को सड़क पर फाँसी दिए जाने की खबर आई और सैयद ने बड़ी-बड़ी आँखों से समाचारों में तस्वीरें देखीं। उसका दिल बैठ गया। नजीब उसके पिता का दोस्त था। बचपन में वह नजीब के घर खेलने जाया करता था। नजीब का भतीजा उसका खास दोस्त था।

अफगानिस्तान में एक खूनी क्रांति हुई। एक कट्टरपंथी सरकार सत्ता में आई। नई सरकार और भारत सरकार के बीच संबंध अच्छे नहीं थे। पुरानी सरकार के अधिकारी कुछ दिनों तक दिल्ली में रुके, लेकिन बाद में उन्हें भी देश छोड़ना पड़ा। सैयद के माता-पिता जल्दबाजी में दिल्ली से निकल गए। जाने से पहले वे उससे मिल भी नहीं पाए। कई दिनों तक उनके बारे में कुछ पता नहीं चला। न कोई फोन आया, न कोई चिट्ठी। घर की याद सताने लगी। लगातार युद्ध चल रहा था। माता-पिता लापता थे, बहन विधवा हो गई थी, सैयद का कोई पता नहीं था; और पुणे में वह अंग्रेजी और मेडिकल की पढ़ाई में संघर्ष कर रहा था। लेकिन सैयद बहुत दृढ़ और दृढ़ था। वह इस असाधारण स्थिति के बारे में खुलकर बोलने से कतराता नहीं था। अगर मैं उससे कुछ पूछता, तो वह कुछ शब्दों में जवाब देता। आखिरकार, मैंने हार मान ली।

एक बार मैं सिनेमा देखने गया था - मीरा नायर की 'सलाम बॉम्बे'। एक ऐसी फिल्म जो दिल को छू जाती है। वह लड़का, जो घर से निकलकर आवारा बन गया है... अपना नाम खो देता है, अपना गाँव खो देता है। मुंबई में उसका जीवन संघर्ष शुरू होता है। वह लड़का चाय के ठेले पर काम करने लगता है। 'चाय-पाव' उसका नाम बन जाता है। एक बार डाकघर देखकर उसे घर चिट्ठी लिखने की इच्छा होती है। लिखने की मेज के सामने बैठकर वह उत्सुकता से चिट्ठी लिखने का इरादा बताता है, लेकिन उसे पता नहीं होता। जब वह पता सिर्फ 'रामपुर' बताता है, तो लिखने की मेज नाराज़ हो जाती है। 'अगर तुम्हें पता नहीं पता था, तो तुमने चिट्ठी लिखकर मेरा समय क्यों बर्बाद किया?' वह पूछती है। लिखने की मेज बार-बार पूछती रहती है। वह लड़का नाराज़, उदास हो जाता है और धीरे-धीरे गायब हो जाता है। अंत में, गुस्से में आकर लिखने की मेज चिट्ठी को मसलकर फेंक देती है। कैमरा उस कागज़ के बंडल पर ठहर जाता है जो लुढ़कते हुए घर की ओर जा रहा है और इस विशाल मानव समूह में लापता लोगों के अकेलेपन को हमारे सामने प्रस्तुत करता है...

यह सब देखते हुए मुझे यह भी महसूस हुआ कि मेरे बगल में बैठा सैय्यद बहुत दुखी था। वह अब और बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था। उसके गहरे दुख का अंत हो गया। वह फूट-फूट कर रोने लगा। मैंने किसी तरह उसे दिलासा दिया, उसकी देखभाल की और उसे हॉस्टल ले आया। वह चार दिन तक इधर-उधर भटकता रहा। उसने एक शब्द भी नहीं बोला। चौथे दिन उसने मुझसे कहा, “मैं चार दिन से सोया नहीं हूँ। मुझे नींद नहीं आ रही।” मुझे समझ नहीं आया कि क्या कहूँ। लेकिन उसे इस गहरे दुख का अचूक इलाज मिल गया था। उस दिन उसने फिल्म एक बार नहीं, दो बार नहीं, बल्कि तीन बार देखी। उसने थिएटर के अंधेरे में जी भर कर रोया। उसके दिल में बसा सारा दुख एक पल में धुल गया और फिर वह शांत और स्थिर हो गया।

सैय्यद की छुट्टियों में उनसे मिलने कोई नहीं आता था, और न ही वे कभी घर जाते थे। घर कहाँ था? तबाह और अशांत अफ़गानिस्तान से सब लोग इधर-उधर बिखरे पड़े थे। अगर कभी जाते भी, तो मेरे गाँव आते। खुशी से रहते। जाते समय वे हॉस्टल के केयरटेकर से अपनी कर्कश आवाज़ में, फ़र्द्या मराठी में कहते, "गव्वी ज्वावुन यतो!" वे गाँव के ब्लड बैंक में रक्तदान करते। (जब भी करते, उन्हें चक्कर आ जाते!) वे मज़ाक में कहते, "तुम्हारा अलसैटियन 'भौ भौ' नहीं, बल्कि 'गला: गला:' चिल्ला रहा है!" एक बार उन्होंने बैडमिंटन टूर्नामेंट का उद्घाटन किया, और पत्थी ने टूर्नामेंट में भाग लिया और ट्रॉफी जीती। वे घाट पर बने आरामदायक होटल की मसालेदार मिसल बड़े चाव से खाते थे। वे बाढ़ पीड़ितों की मदद के लिए थैला लेकर जाते थे। वे गाँव के स्कूल के दान कार्यों में जी-जान से मेहनत करते थे। कृष्णा नदी उत्सव के दौरान मैं दिल खोलकर ढोल बजाता था।

हम नदी किनारे बैठकर बातें किया करते थे। उन्हें अपने अफ़ग़ान वंश पर कितना गर्व था! ईरानी, दुर्रानी, अब्दाली, मेरे इतिहास का खलनायक, जिसने सोमनाथ को लूटा, उनके प्रेरणास्रोत थे। वे हमेशा इस बात का बखान करते रहते थे कि कब और कितनी बार किसने भारत पर आक्रमण किया; कैसे, कहाँ और क्या लूटा। वे यह भी दावा करते थे कि लड़ने वाले अफ़ग़ान लोगों को कभी गुलाम नहीं बनाया गया। मेरा अफ़ग़ानिस्तान गांधारी, पठानी साम्राज्य, काबुलीवाला और पानीपत तक ही सीमित था। मैं उनकी शेखी बघारता रहता था। भारत की जाति व्यवस्था उनकी आलोचना का पसंदीदा विषय था। इसके अलावा, भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता, अस्वच्छ परिस्थितियाँ, निरक्षरता... उनके पास आलोचना करने के लिए बहुत सारे विषय थे। सच हो या झूठ, रंगीन हो या अतिरंजित आलोचना। कभी चुभने वाली, कभी तीखी और चीखने वाली, खूनी आलोचना। एक दिन मैंने पलटवार करने का फैसला किया। उन्होंने सीधे अफ़ग़ान महिलाओं के बुर्के को छुआ। यह असमानता का, पुरुष प्रधानता का प्रतीक कैसे हो सकता है? इससे महिलाओं को श्वसन संक्रमण, टीबी आदि कैसे हो सकते हैं? इससे विटामिन डी कैसे कम होता है... वगैरह। हमने बहुत बातें कीं। मेरी बातों से वह बहुत हैरान हुआ। उसके गाँव में भी ऐसी सोच नहीं हो सकती थी। उसके अनुसार, पर्दा एक स्त्री की सुंदरता, परिपक्वता, कामुकता और पुरुषों को चुनौती देने वाले कार्यों का एक स्वतंत्र, खुला और निर्भीक प्रतीक था। यह ऐसा था जैसे कहना, 'लड़की, पर्दा पहनो, वरना हम घायल हो जाएँगे।' यह ऐसा था जैसे दिखाना कि तुम्हारे नाखूनों को देखकर भी हम काँप जाते हैं। सैयद ने कहा, पर्दा गर्व से दिखाने की चीज है, यह नारीत्व का प्रतीक है, और मैंने पलक झपकते ही फटे हुए पर्दे को सिल दिया।

धीरे-धीरे सैयद कॉलेज में रम गया। वह इतना आत्मविश्वास से भर गया कि मानो शेरनी बन गया हो। कॉलेज ऑर्केस्ट्रा के दौरान एक लड़की उस पर फिदा हो गई। वह सांवली, गोरी अप्सरा उसके मन में छाई रहती थी। अगर कोई उसे छेड़ता, तो वह बहुत शर्मिंदा हो जाता। मैंने कहा, "यह मुश्किल है, सैयद। उसका परिवार बहुत धार्मिक है।"

यह कैसे कहें, "मैं बस मज़े करना चाहता हूँ, और वह भी!"

हालांकि, सैयद एक अलग बैच में चला गया और बहक गया। पढ़ाई से उसका नाता टूट गया। उसने नए शौक पाल लिए, नई-नई गलत राहें अपना लीं। उसे लगातार फेल होने वाले बच्चों के

साथ रहने में कोई बुराई नहीं लगती थी। लेकिन बाद में यह भावना भी गायब हो गई। जब उसने देखा कि उसकी उम्र के बच्चे उससे बहुत आगे निकल चुके हैं, तो उसे शर्म आने लगी। तब उसने मन लगाकर पढ़ाई शुरू कर दी।

इसी बीच, उनके पिता के नियमित पत्र आने लगे। वे अब फ्रांस में थे। वे किसी संस्थान में पढ़ा रहे थे। उनकी बहन भी वहीं थी। लेकिन इन सबके बावजूद, सैयद और उनका परिवार मिल नहीं पा रहे थे। उनका पासपोर्ट अफगानिस्तान की अपदस्थ सरकार द्वारा जारी किया गया था। उस सरकार को यूरोपीय देशों द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं थी। उन्हें मौजूदा सरकार का पासपोर्ट कहाँ से मिलता? वे कुछ चिंतित थे। उनके पिता ने लंबे पत्राचार के बाद इस समस्या का समाधान किया। जैसे ही सैयद ने अपनी अंतिम परीक्षा उत्तीर्ण की, वे अपने पूरे परिवार से मिलने फ्रांस के लिए रवाना हो गए। हम दोस्त भी उनकी तरह ही खुश थे।

सैयद अब इंग्लैंड में हैं। वे एक गाँव में अभ्यास करते हैं। उनके माता-पिता फ्रांस में रहते थे, लेकिन वहाँ का वातावरण अफ़गानों के लिए अनुकूल नहीं है, इसलिए सैयद के दादा-दादी अब ईरान में हैं। उनकी बहन की शादी एक नाइजीरियाई व्यवसायी से हुई है। वह मेक्सिको में रहती हैं। सैयद की पत्नी मूल रूप से ऑस्ट्रेलिया की हैं। उनका पालन-पोषण सूडान में हुआ। उनकी मुलाकात सैयद से फ्रांस में हुई थी। सैयद के दो प्यारे बच्चे हैं। वे और उनके बच्चे मैनचेस्टर यूनाइटेड के कट्टर प्रशंसक हैं। वे एक भी मैच नहीं छोड़ते। वे सभी मुझसे फेसबुक पर जुड़े हुए हैं। सैय्यद कहता है कि वह कॉलेज के मिलन समारोह में कभी न कभी ज़रूर आएगा, वह काबुल भी जाएगा। इसके अलावा, वह एक दिन के लिए ईरान जाना चाहता है, अपने ससुराल वालों से मिलने ऑस्ट्रेलिया जाना चाहता है, अपने भतीजों से मिलने मेक्सिको जाना चाहता है... मैं देखना चाहती हूँ कि वह कहाँ जाता है और कब मेरे पास आता है। वह मेरे गाँव भी आना चाहता है, नदी किनारे फिर से बातें करने के लिए।

जब वो आएगा, तो हम शाम को घाट पर जाएँगे। नदी में पैर डुबोते हुए हम दिल खोलकर बातें करेंगे। नदी ने ही शायद सैय्यद को मेरा गाँव दिया होगा, जिसे उसके वतन से, उसके अपने गाँव से निर्वासित कर दिया गया था। क्योंकि मुझे पूरा यकीन है कि जब भी सैय्यद मेरे पास आता, तो जाने से पहले बच्चों से कहता, 'गाँव आग लेकर आ रहा है!'

•

मालिक

• प्रवेश द्वार पर लगे बोर्ड पर बहुप्रतीक्षित सूचना दिखाई दी – 'नाट्य प्रेमी लड़के-लड़कियाँ अमुक समय पर हॉल में एकत्रित हों' इत्यादि। हम समय से पहले ही पहुँच गए। एक-एक करके वरिष्ठ छात्र एकत्रित हुए। गुरुजी के बारे में चर्चा शुरू हुई। फिर स्वयं गुरुजी प्रकट हुए। कॉलेज में बाकी सभी को 'सर' कहा जाता था, लेकिन ये गुरुजी थे। उन्हें मराठी अच्छी तरह जानने का ज़रा भी गर्व नहीं था और अंग्रेज़ी न जानने में उन्हें ज़रा भी संकोच नहीं था, यही तो उनकी विशेषता थी। इसीलिए इन्हें 'गुरुजी' और अन्य लोगों को 'सर' कहा जाता था। गुरुजी कॉलेज के नाट्य क्लब के प्रमुख थे।

फतवा जारी किया गया कि उपस्थित सभी नए छात्र अपना परिचय दें। ऐसा किया गया। फिर वरिष्ठ छात्रों ने अपने नाम और उपलब्धियाँ बताईं। उसके बाद, शिक्षक ने बोलना शुरू किया। नए छात्रों का स्वागत करने के बाद, उन्होंने महाविद्यालय की गौरवशाली नाट्य परंपरा के बारे में बताया। उन्होंने बीच में किसी पर ताना मारा होगा, क्योंकि ज़ोरदार हंसी गूंजी - ज़ाहिर है, वरिष्ठ छात्रों के बीच। हमें उनके भाषण के संदर्भ की आवश्यकता नहीं है। वे बीच-बीच में चुटकुले सुना रहे थे और शानदार शब्दों का खेल खेल रहे थे। अंत में, उन्होंने कहा, "...तो इस महाविद्यालय की नाट्य 'वालवाली' में आपका स्वागत है, जिसकी इतनी गौरवशाली परंपरा है, क्षमा करें, आंदोलन है!"

मैं, जो रंगमंच आंदोलन में भाग लेने के लिए बड़े उत्साह से और विश्व मंच पर बदलाव लाने की उत्सुकता के साथ आया था, इस स्वागत से अभिभूत हो गया। बेशक, मुझे बहुत बाद में एहसास हुआ कि हम जो कर रहे थे उसे 'आंदोलन' कहना भी महोदय की ओर से एक तरह की कृपा थी। दरअसल, यह एक कॉलेज का नाटक है। इसमें अभिनय करने वालों की शारीरिक और बौद्धिक आयु वर्षों तक एक जैसी ही रहती है। इसलिए, बाद में हमें लगने लगा कि अगर सर इसमें वर्षों तक रुचि लेते हैं, तो यह कुछ ज़्यादा ही है। हर बार बच्चे नए होते हैं, गलतियाँ वही होती हैं। उन्हें अभिनय का इतना ही अनुभव मिलेगा। नाटक की समझ भी अविश्वसनीय होगी। तो सर को इससे क्या आनंद मिलता है? उनकी सोच हमसे कहीं ज़्यादा व्यापक थी। राष्ट्रीय और विश्व रंगमंच का उनका अध्ययन भी सहज था। लेकिन पता नहीं क्यों, उन्हें हमारी 'भटकन' में रुचि थी। यह गुरु सच में बहुत उत्साहित होते थे। यह केवल इसलिए संभव था क्योंकि वे सच्चे शिक्षक थे। जिस शांति और लगन से वे कक्षा में बच्चों की कठिनाइयों को हल करते थे, उसी मार्ग को उन्होंने रंगमंच के क्षेत्र में भी अपनाया था। वे कहते थे, "कॉलेज में कोई किसी को नहीं सिखाता। हमारा काम आपको यह सिखाना है कि कैसे सीखा जाए। बाद में, हर कोई खुद सीखना चाहता है।" उन्होंने नाटक के साथ भी यही किया। उन्होंने हमें नाटक पढ़ने, मंचन करने, प्रदर्शन करने और देखने का एक नज़रिया दिया। बाद में, हमने अपने दम पर कमोबेश प्रगति की। कुछ लोग पीछे भी हट गए; लेकिन हमने इसे जाने दिया।

मैं निजी तौर पर उन्हें 'मास्टर' कहकर संबोधित नहीं कर रहा हूँ, यह अनादरपूर्ण नहीं है। पिछले कई वर्षों से हम सभी उन्हें इसी तरह संबोधित करते आ रहे हैं। उनके सामने 'अहोय सर' और

निजी तौर पर 'ए मास्टर'। हालांकि वे हमारे सर हैं, लेकिन दिल से वे एक मित्र समान हैं, इसलिए यह एक मज़ाक है। वे भी यह जानते हैं और उन्हें इस पर कोई आपत्ति नहीं है।

मास्टर के कुछ शरारती कारनामे थे। एक बार जब हम नाटक चुन लेते और अभ्यास शुरू कर देते, तो मास्टर आखिरी दिन तुरंत आ जाते, चाहे हम उन्हें बुलाते भी... "तुम सब कुछ तैयार कर लो। फिर मैं रिहर्सल में आकर तुम्हें बताऊंगा कि क्या गड़बड़ हुई।"... मास्टर सचमुच ऐसा करते थे। वे बहुत गुस्सा होते थे! नाटक में बदलाव का सुझाव एक दिन पहले देने का क्या फायदा? लेकिन नहीं। यही उनका अंदाज़ था। आते ही वे कहते, 'तुम चरखामू हो!' फिर, जल्लाद के जोश के साथ, हमारी नाट्य कला की धज्जियां उड़ा देते। हम सब आँखों में आँसू लिए सुनते। जब यह सब खत्म हो जाता, और हमें यकीन हो जाता कि हम काफी शांत हो गए हैं, तो वे कहते, "नहीं, लेकिन यह अभी भी अच्छा है। कम से कम दर्शक उठकर खुद पर्दा तो नहीं गिरा देंगे!" फिर सुझावों की बौछार हो जाती। एक-दो दृश्य हटा दिए जाते। यह सिलसिला सुबह चार बजे तक चलता रहता। लेकिन इन सभी सुझावों से हमारे बेतरतीब, अटपटे, टुकड़ों में बँटे नाटक को एक परिष्कृत ढाँचा मिल जाता। हमारा नाटक और भी परिष्कृत और रोमांचक हो जाएगा। गुरु के प्रति हमारा क्रोध कहीं न कहीं निकल जाएगा।

प्रयोग के दिन, गुरुजी हर जगह भागदौड़ करते नज़र आते। मेकअप, सेट, घंटी बजाना, पर्दा उठाना, जो भी ज़रूरी होता, गुरुजी का काम होता। दूसरी घंटी बजते ही गुरुजी फूलों की वर्षा करते और नारियल फोड़ते। सभी लोग भावभीनी उनके सामने झुक जाते। पर्दे के पीछे लगे दीपों

से जगमगाते लाल मखमली पर्दे के हटते ही, दर्शकों की ओर से तालियों, सीटियों और तीरों की बौछार होने लगती। इन सबको दबाते हुए नाट्य प्रयोग शुरू होता और धीरे-धीरे पूरा दर्शक वर्ग हमारे वश में आ जाता। उचित हँसी और उचित तालियाँ बटोरी जातीं। पाँच चुटकुलों पर पाँच तालियाँ और प्रतियोगिता के दौरान गंभीर मौन, इस तरह खेल शुरू होता। अंतराल में, गुरुजी चाय देखते, पृष्ठभूमि और मेकअप में हुए बदलावों की जाँच करते... तीसरे अंक का पर्दा गिरता। सभागार खाली था, और मेरा मन भी खाली। एक अथाह खालीपन उसे भर देता। हम सब एक-दूसरे को गले लगाकर बधाई देते, और खुशी के आँसू सबकी आँखों से बहने लगते। शिक्षक भी जोर-जोर से रोने लगते थे। प्रयोगों की समीक्षा स्वादिष्ट पिठला-चावल के साथ की जाती थी। जब बच्चे सुबह के पहले व्याख्यान के लिए आने लगते थे, तो हम इधर-उधर बिखरने लगते थे। आने वाले कई दिनों तक हमें कॉलेज में कड़े कॉलर पहनकर घूमने की छूट रहती थी।

बेशक, हर बात इतनी सीधी-सादी नहीं होती। असल में, नाटक लंबे समय तक चलने के लिए नहीं होते। कई नाटक होते थे। हर कोई मुख्य भूमिका चाहता था। एक बार, कॉलेज का एक हीरो इसके लिए खास तौर पर उत्सुक था; लेकिन उसके अलावा हर कोई जानता था कि उसकी प्रतिभा क्या है। नाटक, बच्चों को प्रभावित करना, फिर और क्या... यही उसके जीवन का उद्देश्य था। इसलिए, वह उन नाटकों का विरोध करता था जिनमें उसके लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। यहाँ दिन भरते जा रहे थे, लेकिन नाटक तय नहीं हो पाया था। आखिरकार, गुरुजी ने एक नाटक की कहानी सुनाई। नाटक का नाम था 'एक और नारायण निकम'। कहानी और नाम से ही स्पष्ट था कि यह नाटक नारायण निकम के इर्द-गिर्द घूमता है। कॉलेज के हीरो ने नारायण की भूमिका मांगी। गुरुजी ने तुरंत उसे दे दी। बाद में, जब पटकथा हाथ में आई, तो पता चला कि नाटक की शुरुआत में ही नारायण निकम की हत्या कर दी जाती है। 'आ' चिल्लाने के अलावा, उसे ज्यादा कुछ करना नहीं था। बाकी का नाटक इसी हत्या के इर्द-गिर्द घूमता था। लेकिन चूंकि कॉलेज के हीरो को पहले ही वह भूमिका मिल चुकी थी, इसलिए जरूरत पड़ने पर अन्य अच्छे अभिनेताओं को शामिल किया गया और नारायण निकम को बाहर कर दिया गया।

एक बार, इसी तरह का झगड़ा एक संकट में बदल गया। भरोसेमंद समूह ने सहयोग करने से इनकार कर दिया। अंततः, गुरुजी ने ही इसे मंच पर प्रस्तुत किया। कई दौर की बातचीत के बाद, नाटक का मंचन करने का निर्णय लिया गया। आयोजन के लिए नौ दिन शेष थे। लेकिन हमने दिन-रात तीन अंकों का नाटक किया। कोई पाठ या ऐसा कुछ नहीं। तीन-चार बार पाठ, या बस मंच पर खड़े होकर अभ्यास। दिन-रात हॉल में ही रहे। वड़ापाव और कुछ अन्य व्यंजन ही भोजन थे। स्नान और अन्य चीजें ही एकमात्र साधन थीं। लेकिन अंततः, दसवें दिन, यह नवरात्रि उत्सव पूरी तरह सफल रहा और हमारी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। पहले हम तनाव के कारण सो नहीं पाते थे, अब हम खुशी से झूम रहे हैं। लेकिन इन सब के कारण, हमारी टीम बहुत करीब आ गई। अगर फिर कभी कोई विवाद होता, तो हम नवरात्रि के इस उदाहरण को अपने सामने रखते। हर नाटक अच्छा नहीं होता। हमारी किस्मत में भी ऐसे नाटक थे जो असफल रहे। हाल ही में, सभी पूर्व थिएटर कलाकारों का एक व्हाट्सएप ग्रुप शुरू हुआ। ज़ाहिर है, इसे खुद मास्टर ने शुरू किया था। नाटक से जुड़ी कई अच्छी यादें ताज़ा हो गईं। फिर मास्टर ने पहल करते हुए असफल

नाटकों की यादें भी जोड़ दीं। तो आप पूछ ही रहे हैं! यह मत पूछिए कि कितनी शर्मनाक यादें भी निकलीं! ऐसा ही एक नाटक पूरी तरह से असफल रहा। जब तीसरा एपिसोड चल रहा था, दर्शक बहुत नाराज़ होने लगे। सभी कलाकार रोते-रोते सूजी हुई आँखों के साथ बाहर आए, किसी ने बाहर बोर्ड पर लिख दिया था, 'तीसरा एपिसोड देखो, मुफ्त चाय मिलेगी!' फिर खूब गपशप हुई। बहुत सारी! मतभेद शुरू हो गए। कोई कुछ बोलता रहा, कोई कुछ बोलता रहा। हम एक-दूसरे की कमियों पर भी बात करने लगे। कुछ घाव कीड़ों से भरे हुए थे। माहौल तनावपूर्ण होते देख गुरुजी ने कहा, "अच्छा हुआ कि तुमने उसकी वर्मा पर उंगली उठाई, लेकिन उससे भी अच्छा यह हुआ कि तुमने उसकी शर्मा या गुप्ता पर उंगली नहीं उठाई!" यह सुनकर सब लोग जोर-जोर से हंसने लगे और माहौल शांत हो गया।

गुरुजी अपनी वाक्पटुता में माहिर हैं। संसद में पहुँचते ही सब लोग खड़े होकर बोलने लगे। अंत में गुरुजी ने एक हास्यपूर्ण टिप्पणी करके अराजकता को शांत किया, "सभी को अपनी-अपनी सीटों पर बैठना चाहिए।"

कॉलेज परिषद की बैठक में एक बार डीन से गुस्से में पूछा गया सवाल, "क्या हमारे तीर्थयात्रियों का नाम कॉलेज के सात साल के ट्रांसक्रिप्ट में है?" यह सवाल मास्टर को याद था।

उनका एक पसंदीदा सिद्धांत था कि सबसे भद्दा, सबसे बेकार चुटकुला भी एक अलग तरह की प्रतिभा की मांग करता है! वे कहा करते थे, "मैं 'पीजे' पर एक घंटे का व्याख्यान दे सकता हूँ। सबसे भद्दा चुटकुला और सबसे बेहतरीन चुटकुला बनाने में एक समान प्रतिभा लगती है।" और एक दिन उन्होंने सचमुच ऐसा ही व्याख्यान दिया। चैट में यह विषय उठा और चलता रहा। हास्य, मस्तिष्क में हास्य की शारीरिक क्रिया, हमारे शरीर और मन पर इसके प्रभाव, इसकी भाषा, अश्लील और भद्दा जैसे विचार; नाटक, गद्य, पद्य, घरेलू और विदेशी हास्य... हे भगवान! मैंने ट्वाला को जिस तरह का गंभीर, वैचारिक और फिर भी रोचक हास्य पसंद है, उस पर ऐसा प्रवचन पहले कभी नहीं सुना। लेकिन यह टिप्पणी एक अपवाद है। उस्ताद का हमेशा का विषय एक अच्छा पुराना दादा कोंडके है!

स्टाफ डिबेट में यह सारी प्रतिभा खुलकर सामने आती। गणेशोत्सव के दौरान होने वाली स्टाफ डिबेट एक औपचारिक कार्यक्रम होता था। शांत और समझदार माने जाने वाले स्टाफ के सदस्य खूब हंगामा करते। अगर कमर के ऊपर कोई मज़ाक किया जाता, तो वक्ता को कॉलेज से निकाल दिया जाता। दरअसल, यह एक मेडिकल कॉलेज था, इसलिए जननांगों के बारे में बात करना वैसे भी शर्मनाक माना जाता था, खासकर भाद्रपद माह में। 'भाई' मत कहो, 'बुवा' मत कहो, 'सीनियर' मत कहो, 'जूनियर' मत कहो;' सभी एकमत होकर यही कहते।

नाटक के अभ्यास के दौरान भी यह असहजता बनी रही। जो हुआ, वह रंगीन रिहर्सल थी। मंच पर मौजूद युगल और भी रंगीन थे। उन्हें एक-दूसरे के प्रति अपने प्यार को व्यक्त करने के लिए अभिनय करने की आवश्यकता नहीं थी। इसलिए, मंच पर नाटक का प्रेम दृश्य बहुत जीवंत था। कॉलेज का दिन था। उम्र तितली की तरह थी। नवविवाहितों का प्यार मुस्कुरा रहा था। एकदम सटीक। दोनों ने एक-दूसरे को गले लगाया। बड़ी सहजता से, खुलकर मुस्कुराते हुए, वे एक-दूसरे की आँखों में देखते रहे। रोमांटिक पृष्ठभूमि संगीत वातावरण को भर रहा था। अभ्यास कक्ष में

गुलाबी धुंध छाई हुई थी... और सन्नाटा तोड़ते हुए, गुरु की आवाज गूंजी, "ऐसा लगता है कि नाटक के वृक्ष पर एक नया फूल खिला है, लेकिन सावधान रहें कि इस बीच यह फल न दे!"

एक बार विभिन्न गुणों की प्रतियोगिता हो रही थी। सभी लोग जोश में थे। हर तरफ़ अद्भुत विचारों की बारिश हो रही थी। बीच में एक बारिश का गीत बजने लगा। वे दोनों बारिश में बेतहाशा नाच रहे थे, इत्यादि। लेकिन वे बारिश कैसे करवाएंगे? गुरु ने एक अनोखा सुझाव दिया। एक लंबे कपड़े में रोटी के टुकड़े भर दिए गए। दोनों ने उस कपड़े को पर्दे के ऊपर पकड़ रखा था। पर्याप्त समय मिलने पर, कपड़े को नीचे खींच लिया गया। तो देखिए! पल भर के लिए रोटी के टुकड़ों का पर्दा नीचे गिर गया। मंच पर केवल पराबैंगनी प्रकाश था, बाकी सब अंधेरा था; इसी वजह से रोटी के टुकड़े पानी की बूंदों की तरह चमक रहे थे। बिजली का भ्रम पैदा करने के लिए कैमरे की फ़्लैश का इस्तेमाल किया गया... तालियों और ज़ोरदार जयकारों के बीच हम जीत गए। मंच पर ऐसी बारिश पहले कभी नहीं हुई थी, और अगर कोई इसे दोबारा कर पाए, तो हम इस पर पेटेंट करवा लेंगे!

एक बार किसी ने एक नई, साहसिक और हास्यप्रद कॉमेडी स्क्रिप्ट लिखी। सब खुश थे। यह एक अंक का नाटक था, बिल्कुल वैसा ही जैसा कॉलेज के लिए ज़रूरी होता है। सभी पात्र युवा थे। लड़कियाँ कम थीं। भरपूर उत्साह था। प्रोफेसरों का मज़ाक उड़ाने के लिए खूब गुंजाइश थी। लेकिन जब स्क्रिप्ट पढ़ी गई, तो मास्टर ने लेखक को खूब खरी-खोटी सुनाई। अगले ही दिन स्क्रिप्ट लेखक के कमरे से गायब हो गई। शाम को लेखक भी गायब हो गया... उसे ढूंढने की कोशिश करने पर उसने मुझे बताया कि उसे यह स्क्रिप्ट लिखने की अनुमति नहीं थी। जब मामला शांत हुआ, तो मास्टर ने मुझे बताया कि स्क्रिप्ट चोरी हो गई थी। मास्टर को यह साहित्यिक चोरी बिल्कुल भी मंजूर नहीं थी। स्क्रिप्ट और नाटककार दोनों मास्टर के निर्देश पर गायब हुए थे।

मास्टर का अवतार लंबा, दमदार स्वर, घनी दाढ़ी, थोड़ा निकला हुआ तोंद, तोंद को छुपाने वाली कमीज और गले में शबनम था। भले ही मास्टर डीन बन गए थे, लेकिन उनका मूल रूप नहीं बदला था। उनका पहनावा भी नहीं बदला था। वास्तव में, मास्टर के व्यवहार में पहनावे को लेकर एक तरह की पाबंदी थी। इसलिए, डीन बनने के बाद केवल कमरा और कुर्सी बदली, मास्टर वैसे ही रहे। डीन के कमरे का दरवाजा हमेशा खुला रहता था। डीन सर कभी कार का इस्तेमाल नहीं करते थे। उनका क्वार्टर पास ही था। सर साइकिल से आते-जाते थे। पार्किंग में डीन की कार के लिए एक खास जगह बनी हुई थी। सर की साइकिल वहीं खड़ी रहती थी। डीन सर एक चक्कर लगाते थे। मास्टर हर दिन उठकर इधर-उधर घूमने से बहुत थक जाते थे। फिर वे पूछते थे - "क्या सच में कुछ खास है? मुझे नाटक की तरह गोल-गोल घूमकर यह क्यों कहना पड़ता है कि 'मैं मथुरा मंडी गया था'?"

ऐसे जीवंत गुरु की शिक्षा भी उतनी ही जीवंत होगी! उनकी कक्षाएँ हँसी से भरी रहती थीं। जब उनसे पूछा जाता कि फ्लूकोनाजोल, इट्राकोनाजोल, इमिडाजोल, आइसोकोनाजोल, बाइफ्लूकोनाजोल जैसी दवाओं के नाम कैसे याद रखें, तो सर बड़े ही ठंडे लहजे में जवाब देते – “अरे मेरे बच्चे, क्या तुम्हें मराठी में गालियाँ देना नहीं आता?”

एक लड़की थी जो साहब के मुंह से निकले हर शब्द को लिख लेती थी। फिर, जब साहब कोई

मजाक करते, तो वह उससे कहते, "इसे मत लिखो, यह तो सिर्फ मजाक था!"
ज्ञान और ज्ञान प्रदान करने की क्षमता के बल पर गुरु जी 'प्रोफेसर एमेरिटस' बन गए। यह उपाधि गुरुओं के गुरु के समान है। यह एक बड़ा सम्मान था। वे पहले प्रधानाध्यापक थे, लेकिन अब आचार्य बन चुके थे। लेकिन आचार्य बनने के बाद भी वे कभी शुद्धाचार्य नहीं बने। एक बार एक युवा डॉक्टर ने ऑपरेशन की एक अलग विधि दिखाई। ऑपरेशन तो वही था, लेकिन उसे करने का तरीका सरल और आसान था। सभी वरिष्ठ प्रोफेसर प्रभावित हुए, लेकिन चुप रहे। लेकिन गुरु जी ने सीधे आदेश दिया कि 'छात्र अब इस विधि का प्रयोग करें।' 'कल से मेरे छात्र मेरी इकाई में इस विधि का प्रयोग करेंगे।' बस, इतने सरल वाक्य में उन्होंने अपने से उम्र, ज्ञान और अनुभव में बहुत छोटे एक नए डॉक्टर के शानदार विचार को बिना किसी संकोच के स्वीकार कर लिया। यह उनकी प्रतिभा को दी गई एक सच्ची प्रशंसा थी, जिसमें उन्होंने अपनी महानता को बीच में नहीं आने दिया। यह हमारे लिए किसी नई चीज को स्वीकार करने का एक बड़ा सबक था। इसीलिए कहा जाता है कि भले ही कोई गुरु आचार्य बन जाए, वह कभी शुद्धचार्य नहीं बन सकता।
इसीलिए हम आज भी ऐसे सदाबहार गुरु की संगति के लिए तरसते हैं। आज भी व्हाट्सएप के ज़रिए सूचना दी जाती है - सभी लोग फलां जगह फलां नाटक देखने आएं। और सब आ जाते हैं। भले ही गुरु जी सेवानिवृत्त हो चुके हैं, फिर भी वे कॉलेज के वर्तमान नाटक समूह के संपर्क में हैं। इसलिए, जो लोग अभी-अभी कॉलेज से निकले हैं, उनसे लेकर जो लोग पहले ही 'कृतंतकटकमलध्वज्जरा दिसो लागी' देख चुके हैं, सभी इकट्ठा होते हैं। गुरु जी ही वह कड़ी हैं जो सबको जोड़ती है। नाटक बहुत रंगीन होता है। उसके बाद देर रात तक गपशप चलती रहती है। यह चौथा सत्र अक्सर नाटक से भी ज़्यादा रंगीन होता है।

•

कुंती

• जब मैं इस वाक्य पर पहुँचती हूँ, ‘मैंने तुम्हें बताया कि क्या करना है, अब मैं तुम्हें बता रही हूँ कि क्या नहीं करना है,’ तो मेरी आवाज़ में एक तीखापन आ जाता है। उसमें थोड़ा दबाव, थोड़ी समझदारी और थोड़ा उत्साह, तीनों भाव घुल-मिल जाते हैं। अपनी दाहिनी तर्जनी उंगली को ज़ोर से हिलाते हुए और वहाँ मौजूद लोगों की ओर देखते हुए मैं कहती हूँ, “चाहे कुछ भी हो जाए, गाँव वालों की तरह पेड़-पौधों से बनी दवा मत लेना। कुछ लोग कहेंगे कि उसमें डंडी डालकर निगल लो, कुछ कहेंगे कि उसे पेट पर मलकर निगल लो; लेकिन कृपया इनमें से कुछ भी मत करना।” मेरी आवाज़ और भी ऊँची हो जाती है, और भी तीखी हो जाती है। मेरी आँखें चौड़ी हो जाती हैं और मैं कहती हूँ... “अगर तुमने ऐसा किया, तो तुम्हारी बेटी की जान चली जाएगी! वह मर जाएगी!”

मेरे सामने बैठे माता-पिता सदमे में हैं, लेकिन मन ही मन। स्थिति ने उन्हें पूरी तरह से झकझोर दिया है। वे इतने शांत हैं कि इस वाक्य से उन्हें कोई हैरानी नहीं हो रही। अब वे क्या करेंगे? शादी से पहले ही बच्ची पाँच महीने से ज़्यादा की हो चुकी है! “पाँच महीने के बाद गर्भपात गैरकानूनी है। बहाना यह है कि बच्ची को प्रसव तक किसी महिला आश्रय में रखा जाए, और प्रसव के बाद उसे अनाथालय में दे दिया जाए और बच्ची को घर ले आया जाए।” मैं भारी मन से यही कहती रहती हूँ। मैं समझती हूँ कि बच्ची के लिए यही कानूनी और सबसे सुरक्षित तरीका है, लेकिन वे नहीं समझते। मैं अपनी बात को इतने विश्वास के साथ रखती हूँ कि वे टस से मस नहीं होते। “कुछ करो, बच्ची को आज़ाद करो” बस यही वे चाहते हैं। मेरा डर भी कम नहीं होता, क्योंकि सोनाली जाधव मेरी आँखों के सामने है।

सोनाली जाधव। युवा, चुलबुली, खूबसूरत, बिना किसी वजह के हमेशा मुस्कुराती रहने वाली, गाँव में शायद ही कोई ऐसा हो जिसे दुनिया की कोई चिंता हो। दो कसकर बंधी चोटियाँ, सीना थोड़ा आगे करके चलने का अंदाज़। एक दिन, स्कूल की वर्दी में, चिलचिलाती धूप में, छुट्टी के दौरान, वह हाँफते हुए मेरे केबिन में आई और बोली, “डॉक्टर साहब, मैं थक गई हूँ। मुझे नीचे जाना है। आपको क्या चाहिए?”

मुझे उसकी सीधी-सादी बात पर हैरानी हुई। मैंने बिना चेहरे पर कोई भाव दिखाए पूछा, "आपका नाम क्या है?"

“सोनाली जाधव।”

"आपकी आयु कितनी है?"

“छठी कक्षा में थी, लेकिन दो बार फेल हो गई।” उसने झिझकते हुए बताया कि वह ‘मोटी’ थी।

"अभिभावक?"

वे मैदान में हैं।

"क्या यह सही नहीं निकला?"

कोई भी सही नहीं है।

कितने महीने बीत चुके हैं?

"शायद दो हों, या डेढ़ भी हो सकते हैं... पिछले हफ्ते लय बदल गई।"
क्या आप अपने माता-पिता को लाएंगे?
"वे दोनों?"
ऐसा लगता है कि कोई इसे ला सकेगा। "कोई भी आ सकता है, है ना?"
"लेकिन आप मुझे यह बात घर पर कैसे बताएंगे?"
मुझे आपको बताना होगा। आपकी उम्र कानूनी तौर पर वयस्क नहीं है। चूंकि आपकी उम्र 18 वर्ष से कम है, इसलिए गर्भपात कराने के लिए आपको अपने कानूनी अभिभावक, यानी अपने माता-पिता के हस्ताक्षर की आवश्यकता होगी।
"क्या लंबा वाला काम करेगा?"
तो उसकी दोस्त उसका दूर का चाचा है। क्या तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारा चाचा बनूँ? “नहीं, मुझे अपनी माँ या पिता की ज़रूरत है।”
“देखिए, डॉक्टर...” अब अजीजी की आवाज में।
मैंने संक्षिप्त जवाब दिया, "बिल्कुल नहीं," और मेज पर रखी घंटी बजा दी। मेरी घंटी और हावभाव का उस पर कोई असर नहीं हुआ।
"यह सिर्फ आप ही कर सकते हैं, डॉक्टर... कृपया..."
आप अपने माता-पिता को लेकर आइए, फिर मैं जाँच करके आपको बता दूंगा।
दरवाजा खुला। नर्सें अंदर आ गईं और खुले दरवाजे से बाहर की भीड़ का शोर सुनाई देने लगा। मुझे बेचैनी होने लगी। बाहर खड़ी निगाहें डॉक्टर से मिलने के लिए उसके बुलावे का इंतज़ार कर रही थीं, लेकिन उसे ऐसा लग रहा था जैसे वे निगाहें उस पर शक की नज़र से देख रही हों। लेकिन पल भर में ही वह संभल गई और खुद को संभालते हुए दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ गई। मरीज़ों का इंतज़ार पाँच बजे तक चलता रहा। कुछ को वो नहीं चाहिए था जो उनके पास था, कुछ को वो उस समय नहीं चाहिए था जब उन्हें चाहिए था, कुछ को सफेदी की चिंता थी, कुछ लालची थे। पहले महीने से लेकर नौवें महीने तक, शिकायतें, सोनोग्राफी, जाँचें, मरीज़ों द्वारा मुझसे की गई पूछताछ... मुझे पता ही नहीं चला कि समय कैसे बीत गया... बीच में, एक प्रसव, एक मरीज़ का इलाज... पाँच बजे, मैं अपने राउंड के साथ सीढ़ियों से नीचे उतरने लगा, तभी अचानक सीढ़ियों के अंधेरे से सोनाली जाधव मेरे सामने आ गईं...
“डॉक्टर जी, कृपया देखिए।” उसने विनती की। सीढ़ियों के दूसरे छोर पर दो हट्टे-कट्टे जवान लड़के खड़े थे। उनकी निगाहें कहीं और थीं, लेकिन मुझे पल भर में समझ आ गया कि उनकी निगाहें हम पर टिकी हैं। ये वही लड़के होंगे। “अपने माता-पिता में से किसी एक को साथ लाओ, या कम से कम इस बात का सबूत लाओ कि तुम्हारी उम्र 18 साल से ज़्यादा है।” मैंने दृढ़ता से कहा और उसकी प्रतिक्रिया का इंतज़ार किए बिना, मैं जल्दी से वहाँ से चला गया।
काम की भागदौड़ में मैं इस घटना को भूल गई थी। इस तरह की जाँचें आम बात हैं, खासकर उन लोगों के लिए जो अभी-अभी प्रैक्टिस शुरू कर रहे हैं। ऐसे डॉक्टर को प्रैक्टिस चाहिए होती है और ऐसे मरीज़ को सस्ती, जल्दी, गोपनीय और लचीली सेवाएँ चाहिए होती हैं। यानी, 'न पति, न पत्नी' वाली कहावत। चूंकि मैं भी उस समय सिटर थी, इसलिए ऐसी सिटर आम थीं। कॉलेज के

दिनों से ही ऐसी गर्भवती लड़कियों को 'कुंती' कहकर पुकारने का चलन था। थोड़ा मज़ाक, थोड़ी शरारत और आने-जाने वाले जासूसों से इसे छुपाने की कोशिश, ये सभी रंग कुंती नाम में छिपे थे।

एक दोपहर, मेरे मोबाइल में एक जानी-पहचानी धुन बजने लगी। यह मेरे दोस्त डॉ. सागर का फोन था।

“बोल सागर.”

“कुंती है। उसे संक्रमण है और वह हांफ रही है। तुरंत आओ।”

मैं जल्दी में वहां से निकल गई। कुंती और हांफना बहुत गंभीर मामले थे। गर्भपात करने के लिए कानूनी तौर पर लाइसेंस की ज़रूरत होती है। डॉ. सागर स्त्री रोग विशेषज्ञ नहीं थे; वे सर्जन थे। उनके पास ऐसा लाइसेंस नहीं था। गांव की प्रथा के अनुसार, वे आने वाली मरीज़ का इलाज करते थे। वे अपेंडिक्स, हर्निया आदि के ऑपरेशन करते थे। वे गर्भपात, एमनियोटिक थैली निकालना आदि भी करते थे। उत्साह में वे कुछ गलतियां कर बैठते थे। फिर वे अपने पेशेवर दोस्तों को बुलाकर सब कुछ ठीक कर लेते थे। असल में, उन्हें ऐसी कुंती को स्वीकार नहीं करना चाहिए था। (हम जैसे विशेषज्ञ स्त्री रोग विशेषज्ञ तब क्या करते?) अब चूंकि गर्भपात से संक्रमण हो गया है, इसका मतलब है कि उन्होंने कुछ गलत किया होगा। नसबंदी करते समय लापरवाही हुई होगी। उनका अस्पताल इतना भीड़भाड़ वाला था कि लापरवाही होना स्वाभाविक था। (और उस भीड़ के प्रति मेरी ईर्ष्या भी उतनी ही स्वाभाविक थी।) अब पुलिस केस होगा। (गर्भपात और उससे होने वाली मौतें पुलिस का काम है!) सागर ने मुझे इस झंझट से बचने के लिए बुलाया था...

इन सब बातों के बारे में सोचने से पहले ही मैं सागर के अस्पताल पहुँच गया। वहाँ हमेशा की तरह भीड़, शोर-शराबा, अफरा-तफरी आदि थी। बाहर खड़ी नर्स ने मुझे बताया कि सागर अपने केबिन में एक मरीज की जाँच कर रहे हैं। जैसे ही मैं उनके केबिन में दाखिल हुआ, उन्होंने जिस मरीज की जाँच कर रहे थे, उससे नज़रें उठाकर मुझसे कहा, 'सुतुपक!' कॉलेज में यह एक सांकेतिक शब्द है जिसका अर्थ है कि मरीज की मृत्यु हो गई है। 'सुतुपक' सर्जरी में इस्तेमाल होने वाले एक धागे का नाम है। चिकित्सा जगत में इसका अर्थ है 'मुक्ति'।

क्या? अपने ही अस्पताल में अपने ही मरीज की इतनी दुर्भाग्यपूर्ण मौत के बाद भी वह हिमखंड की तरह शांत कैसे रह सकता है?

"ओह, जब मैं उसे लेकर आई, तो उसकी नब्ज़ चल रही थी और वह हांफ रही थी। मैंने आपको फोन किया और उसे गिरफ्तार कर लिया गया। उसे बचाने का कोई रास्ता नहीं था!"

जब उन्हें एहसास हुआ कि उनके सामने बैठा मरीज भी मेरी तरह ही ध्यान से सब कुछ सुन रहा है, तो वे संभल गए। उन्होंने मरीज और उसके रिश्तेदारों को जाने के लिए कहा और मुझे घटना के बारे में बताने लगे।

ज़ेड.पी. के स्कूल में एक लड़की थी। वह बत्तीस सप्ताह की गर्भवती थी। उसने गर्भपात कराने के लिए कहीं किसी फर्जी डॉक्टर से परामर्श लिया था और उसकी योनि में छड़ें डाली गई थीं। पूरी योनि मवाद और गंदगी से भरी हुई थी। जब सागर ने उसकी योनि की जांच की, तो छड़ें उसके

हाथ से चिपकी हुई थीं।
“पापा!” यह सुनकर मैं चौंक गया। “क्या आपने पुलिस को सूचना दी?”
"नहीं, महोदय। क्यों?"
"तुम पागल क्यों हो? संक्रमण के कारण गर्भपात और मृत्यु... यह एक गंभीर मामला है।"
"आपने कहा था कि आप पांच महीने पहले मुझसे मिलने आए थे..."
"हाँ? उसका नाम क्या है? सोनाली जाधव?"
“उम, सोनाली चंद।”
"अगर यह वही है, तो इसने मुझे अपने नाम के बारे में झूठ बोला है। ये लड़कियां किस तरह की तैयारी कर रही हैं!"
"आपने कहा था कि आपको अपने माता-पिता के हस्ताक्षर चाहिए।"
"तो फिर यह सही है, वह अज्ञानी है, वह कानूनी रूप से सक्षम नहीं है।"
"तुम सही कह रहे हो। लेकिन मुझे घर पर उसे बताने से डर लग रहा था, इसलिए मैं कहीं गया और यह काम करवा लिया।"
"ज़रूर वही होगी। मैंने उसके माता-पिता से इस तरह का मामला लाने को कहा था और फिर उसे वापस भेज दिया था। उसके साथ दो प्रेमी थे।"
तभी दरवाजा खुला और दो लड़कियां अंदर आईं। उन्होंने सागर से पूछा, “क्या आप शव ले जाना चाहते हैं?” और मुझे देखते ही वे वहीं रुक गईं। ये वही दो लड़कियां थीं जो ‘सोनाली जाधव’ को लेकर मेरे अस्पताल आई थीं।
सागर ने उन्हें बाहर इंतजार करने के लिए कहकर डांट लगाई। उसने मुझे बताया कि दरवाजा बंद था, "बाहर कोने में उसके माता-पिता खड़े हैं।"
जैसे ही बच्चे अंदर आए, मैंने खुले दरवाजे से उनकी एक झलक देखी, लेकिन उनके चेहरे मेरे मन पर एक गहरी छाप छोड़ गए। उनके चेहरे मासूमियत के पर्दे से ढके थे, लेकिन उस पर्दे के पीछे से सब कुछ साफ दिख रहा था। उनके चेहरों पर दुनिया भर का दुख, हार, शर्म, गुस्सा और निराशा उमड़ रही थी। हर भावना की लहर उनके चेहरों पर उभरने के लिए बेताब थी, और बाकी भावनाओं को पीछे धकेल रही थी। उनके शरीर में मानो कोई जान नहीं थी। जैसे दीवार पर टांगी हुई बेजान कठपुतलियाँ हों, वे दोनों सीढ़ियों के नीचे कोने में दीवार पर लटके हुए थे। उन्होंने कभी अपने पेट के ऐसे अंत की कल्पना भी नहीं की थी। मेरा पेट मरोड़ रहा था। मेरी नज़र तुरंत डॉक्टर सागर के बंद दरवाजे की तरफ गई। दरवाजे पर खड़ी सफेद कपड़े पहनी नर्स मुझे घूर रही थी, उसने मेरी मुंह पर उंगली रखकर कहा, "शांत रहो।"
दरवाजा फिर खुला और दो पुलिसकर्मी अंदर आए। मैं वहां से यह अंदाजा लगाते हुए निकली कि आगे रामायण में क्या होने वाला है। मैं अपने अस्पताल में लोगों की भीड़ देख सकती थी जो मेरा इंतजार कर रही थी। देर शाम, जब अस्पताल का सारा काम खत्म हो गया, तो हम नियमों के अनुसार मित्रा कॉफी अड्डा में इकट्ठा हुए। फिर डॉ. सागर ने 'सोनाली जाधव' की कहानी की अधूरी कड़ियों को पूरा किया।
वह मेरे पास तब आई जब वह दो महीने की गर्भवती थी; लेकिन चूंकि उसे कानून की जानकारी

नहीं थी, इसलिए मैंने उसे अपने माता-पिता को लाने के लिए कहा। कानून भी बहुत अजीब था। 16 साल की उम्र के बाद कोई भी महिला यौन संबंध के लिए सहमति दे सकती है, लेकिन अगर वह गर्भवती हो जाती है, तो उसे गर्भपात का कानूनी अधिकार नहीं होता। यह अधिकार 18 साल की उम्र के बाद ही मिलता है। उससे पहले, केवल उसके कानूनी अभिभावक ही गर्भपात के लिए सहमति दे सकते हैं। मैं इस सब कानूनी झंझट में नहीं पड़ना चाहता था। मैंने बहाना बनाया कि उसकी उम्र की अज्ञानता का हवाला देकर मैं बच गया। लेकिन वह इस कानूनी दस्तावेज में उलझती ही रही।

जब मैंने गर्भपात कराने से इनकार कर दिया, तो सोनाली और उसके दो छोटे बेटों ने गर्भपात कराने की हर संभव कोशिश की। उन्होंने पपीता खाया, बीज चबाए, काढ़ा पिया... उन्होंने सब कुछ किया, यहाँ तक कि उसके पेट में लात भी मारी, लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ा। इस बीच, चिकित्सा उपचार, सहमति और पैसे भी काम नहीं आए। सोनाली के गर्भ में पल रहा भ्रूण दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। इसी बीच, वे तीनों अपना घर छोड़कर दो-तीन दिन तक भटकते रहे। उन्हें आत्महत्या के अलावा कोई विकल्प नहीं सूझा। वे राजमार्ग पर किसी होटल में जहर पीकर आत्महत्या करने जा रहे थे। होटल मालिक को उनकी हरकतें संदिग्ध लगीं, इसलिए उसने घर पर ही उनकी पिटाई कर दी। जब तक यह सब हुआ, परिवार पहले से ही चिंतित था। उसे कमरे में बंद करने, पीटने आदि के बाद, उसकी माँ ने लड़कों की मदद से उसे पहाड़ पर स्थित दारेवाड़ी की एक महिला के पास ले जाकर 'दवा' ली। उस दवा से जो बीमारी हुई, उसके कारण वह एक सप्ताह तक घर पर ही रही। अंत में, जब उसकी मृत्यु होने लगी, तो उसके माता-पिता उसे संभाल नहीं पाए। वे उसे अस्पताल ले गए, लेकिन तब तक उसकी मृत्यु हो चुकी थी।

बाद में, पुलिस पंचनामा, पोस्टमार्टम आदि के कारण, वे बातें सार्वजनिक हो गईं जिन्हें कोई किसी को बताना नहीं चाहता था। माता-पिता, दोनों बच्चे, सभी इस मामले में चुप रहे। उन्होंने कहा कि उन्हें पता ही नहीं था कि वह गर्भवती थी, उसका गर्भपात हो गया था, आदि। माता-पिता को शव मिलते ही उन्होंने निर्दयतापूर्वक निर्दयता से उसका अंतिम संस्कार कर दिया। उनके अनुसार, लड़की का अंत एक बुरे सपने जैसा था। घाट से घर लौटते ही उसका अंत हो गया।

दो दिन बाद, अखबार ने सनसनीखेज खबर छापी कि दोनों लड़कों ने कब्रिस्तान में फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली है। पुलिस आत्महत्या का कारण पता नहीं लगा पाई क्योंकि मृतकों की जेबों या घर से कोई सुसाइड नोट नहीं मिला था।

मैं सोनाली जाधव को नहीं भूल सकती... फिर भी, मैं उन माता-पिता के सामने रोने से खुद को नहीं रोक पाती जो कहते हैं, "आपको कुछ करना चाहिए, अपनी बेटी को छुड़ाओ!"

•

डॉ. चेयला

• टैक्सी लखनऊ की भीड़भाड़ से निकलकर एक सुनसान सड़क पर स्पीड ब्रेकर से टकरा गई। हालाँकि मैंने लखनऊ की मेहमाननवाज़ी की तारीफ़ सुनी थी, फिर भी मेरे मन में यही धारणा थी कि उत्तर प्रदेश का मतलब अराजकता है। मैं मन ही मन सड़क के संकेतों को समझने की कोशिश कर रहा था, यह सोचकर कि टैक्सी चालक मुझे बेवकूफ़ बनाने की कोशिश तो नहीं कर रहा है। उसी क्षण, मेरी नज़र एक बोर्ड पर पड़ी: रायबरेली 58 किमी। फिर, इंदिरा बाई और उनके करियर को याद करते हुए, टैक्सी दाईं ओर मुड़ी और दीपक की रोशनी में अक्षर चमक उठे: 'संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्वेद संस्थान, आनुवंशिकी विभाग'। वही जाना-पहचाना डीएनए, जो जन्म से मृत्यु तक लोगों के रिश्तों को जोड़ता है, उस विभाग के बोर्ड पर चमक रहा था।

मेरा मन प्रसन्न हो गया। मैंने यहाँ आनुवंशिकी के दो सप्ताह के पाठ्यक्रम में दाखिला लिया था। वैसे तो आनुवंशिकी का ज्ञान मेरे दैनिक जीवन में कोई खास फर्क नहीं डालता। मुझे शायद ही कभी इस ज्ञान और कौशल का उपयोग करने का समय मिलता। लेकिन आनुवंशिकी के प्रति मेरे मन में एक दबी हुई जिज्ञासा थी। यह आश्चर्यजनक था कि न केवल मनुष्य, बल्कि संपूर्ण जीव-जंतु जगत डीएनए की दो कड़ियों द्वारा नियंत्रित होता है। इसका विज्ञान चुनौतीपूर्ण था; लेकिन इसमें निहित काव्यात्मकता ने मुझे कहीं अधिक प्रभावित किया। सूचनाओं के विस्फोट ने अनेक संभावनाएँ पैदा कर दी थीं। कौन सा पेड़ कहाँ उगेगा, फल देगा और खिलेगा; इतना ही नहीं, बल्कि ऐसा लगता था मानो भविष्य में यह भी पता चल सकता है कि कौन किससे संबंध रखेगा, फल देगा और खिलेगा।

पेड़ों से घिरी सुनसान सड़क खत्म होते ही टैक्सी एक छोटी सी इमारत के सामने रुक गई। चारों ओर सन्नाटा पसरा हुआ था। 'गेस्ट अकोमोडेशन' लिखे बोर्ड पर एक बल्ब जल रहा था। अस्पताल की ऊंची इमारतें ऊंचे पेड़ों के बीच से आसपास के इलाके को देख रही थीं। उनकी खिड़कियों की हजारों आंखें अंधेरे में चमक रही थीं। दूर लॉन में चार कुर्सियों के बीच बैठा एक आदमी मेरी तरफ देखने के लिए अपना सिर घुमा रहा था। मेरे आते ही उसका एकांत भंग हो गया। मुझे लगा कि शायद उसे यह अच्छा नहीं लगा होगा। उसी क्षण उसका मोबाइल बजा और उसने अपना सिर घुमाया।

“क्या आप डॉ. शांतनुजी अबयंकर हैं?” मुझे देखकर स्वागत कक्ष से एक कर्मचारी आगे आया। मेरा स्वागत करने, मुझे कमरा सौंपने आदि की औपचारिकताओं के बाद, मुझे थोड़ी ताज़गी महसूस हुई।

कमरे की खिड़की से मैं अपने पीछे लॉन पर खड़े उस आदमी को देख पा रही थी। पता नहीं वो किससे फोन पर बात कर रहा था और क्या कर रहा था, लेकिन उसका पूरा शरीर कांप रहा था। मुझे नहीं पता था कि वो हंस रहा था या रो रहा था। मुझे कल से शुरू होने वाले कोर्स के लिए कुछ पढ़ना था। लेकिन फिर, कमरे में अकेले बैठकर पढ़ने के लिए मैं कहाँ बैठूँगी, इसलिए मैंने फाइल ली और कुर्सी ढूंढने के लिए बरामदे में चली गई। उसी क्षण बत्तियाँ चली गईं। बत्तखों ने चहचहाहट की आवाज़ की। आकाश में चाँदनी की हल्की सी चमक दिखाई दी। और जब मैं इधर-

उधर देख रही थी, सोच रही थी कि आगे क्या करूँ, तभी मुझे लॉन पर रखी कुर्सियों की ओर से एक आवाज़ सुनाई दी: "आओ, दगदरसब! आओ, 'मराठी मानुष'!"

इस अजीबोगरीब फोन कॉल से मैं चौंक गया। अब उस आदमी से बात करना मेरे लिए बेहद जरूरी हो गया था। मैं कुछ हिचकिचाहट के साथ वहाँ पहुँचा। उन्होंने विनम्रता से मेरे लिए एक कुर्सी खींची और अपना परिचय दिया: “मैं डॉ. खन्ना हूँ। ग्वालियर से। वर्तमान में पुडुचेरी सरकार के साथ काम कर रहा हूँ।”

शेकहॅन्ड करत असतानाच मी विचारलं, “लेकिन आपने ये कैसे जान लिया कि मैं महाराष्ट्र से हूँ?”

“आप की गाली से!”

“मतलब? मैंने कब गाली दी?”

“आप बाहर आए और बिजली चली गयी!”

“तो?”

"तो आपने कहा 'चायला'! चयाला महाराष्ट्र का प्रतीक है!"

हम दोनों खुलकर हँसे और फिर बातचीत शुरू हो गई। पंद्रह मिनट के भीतर ही, मैंने डॉ. खन्ना को डॉ. चेय कहकर बुलाना शुरू कर दिया, हमारे बीच इतनी सहजता विकसित हो गई थी।

डॉ. खन्ना एक बाल रोग विशेषज्ञ थे। मध्यम कद, मध्यम शरीर, मध्यम बाल, चौकोर गले वाला नाइटगाउन। अगर उन्होंने थोड़ा मेकअप किया होता, तो लक्ष्मण कार्टून में वे बेहद आकर्षक लगते। गपशप करने में वे माहिर थे। ग्वालियर की एक चॉल में पले-बढ़े, वहीं के मेडिकल कॉलेज से डॉक्टर बने; बाद में इंग्लैंड, ईरान, कतर आदि देशों की यात्रा की और पांडिचेरी सरकार के

लिए काम किया। मेरी तरह, वे भी आनुवंशिकी के क्षेत्र में हाथ आजमाने आए थे।
यह असमिया व्यक्ति, जो अपने बारे में बहुत बातें करता था, मुझमें खास दिलचस्पी नहीं रखता था। उसने मेरे शानदार पेशे, शानदार अस्पताल, शानदार पत्नी, शानदार बच्चों आदि के बारे में कुछ नहीं पूछा, और अगर मैंने कुछ कहा भी तो वह कुछ अजीब सवाल पूछ लेता। बीच में ही उसने मुझसे पूछा, 'क्या आप केसरी पढ़ते हैं?' वह 'मुंडावला' शब्द जानना चाहता था। वह नरम चावल, बढ़िया घी, मेटकूट आदि के बारे में भी बहुत उत्सुक था। बिना पूछे ही उसने मुझे बताया कि नौवारी पोशाक में महिलाएं सबसे आकर्षक लगती हैं। बीच में ही एक बार उसने 'मारे एक जाजा दूजा शोक वाहे' को 'वारे एक जाजा दूजा शोक वाहे' की तरह बोला। मराठी संस्कृति के प्रति सम्मान, प्रशंसा, जिज्ञासा और अज्ञानता का यह मिश्रण शुरू में मीठा-खट्टा था, लेकिन बाद में कड़वा होने लगा। अंत में, गाड़ी फिसलकर एक गणपति उत्सव में पहुँच गई और दूर्वा, केवड़ा और आरती करते समय उसने मुझसे उकड़ी मोदक की विधि पूछी। मैं असमंजस में पड़ गया। उन्होंने मुझे बताया कि वे मोदक खा तो सकते हैं लेकिन बना नहीं सकते, और मैंने उनसे 'नास्त्या चम्भर, मराठी संस्कृति के बारे में इतनी जिज्ञासा क्यों रखते हो?' के लहजे में पूछा।
एक गहरी आह भरते हुए डॉ. खन्ना बोलने लगे... “यह सन् 1960 की बात है। मैं ग्वालियर की एक साधारण सी चॉल में रहता था। मैं चिकित्सा की पढ़ाई कर रहा था। उस समय मैं घुमक्कड़ था।”
मुझे इस पर हंसी आ गई। आज उनकी बातें सुनकर यकीन करना मुश्किल था कि वे कभी मिलनसार हुआ करते थे।
“मतलब, मैं पहले आज के मुकाबले थोड़ा कम बोलता था।” मेरी मुस्कान देखकर उन्होंने कहा। अगले आधे घंटे तक उन्होंने अपनी पूरी जीवन कहानी मेरे सामने खोलकर रख दी... बेहद ईमानदारी, खुलेपन और बेबाकी से।
ग्वालियर में उनके घर के पास साठे नाम का एक मराठी घर था और उस घर में मनोरमा नाम की एक पड़ोसी रहती थी, जो अपनी जवानी के चरम पर थी। ऐसे में जो होना था, वही हुआ। दोनों एक-दूसरे को मन ही मन पसंद करने लगे। चोरी-छिपे नज़रें मिलाना, चोरी-छिपे मुस्कुराना और चोरी-छिपे छूना अब प्यार का ज़रिया नहीं रह गया था। 60 के दशक में ग्वालियर की मध्यमवर्गीय झुग्गियों में बस यही मुमकिन था। आपस में बात करना, साथ घूमना-फिरना, वगैरह तो दूर की बात थी। इसके अलावा, शांत स्वभाव के खन्ना कॉलेज के आखिरी साल में थे और उन्हें लगता था कि परीक्षा पास किए बिना किसी लड़की को शादी का प्रस्ताव देना ठीक नहीं है। हालांकि, उन्होंने यह सब अपनी माँ को बता दिया। उन्होंने कोई आपत्ति नहीं जताई। उन्होंने बस इतना ही कहा, 'परीक्षा के बाद देखेंगे।' लेकिन खन्ना का साठे के घर से रिश्ता गहराता चला गया। दोनों उस मौके को लेकर बहुत उत्सुक थे। मनोरमा के हाव-भाव से साफ था कि उनके मन में और कुछ नहीं था।
फिर मनोरमा के साथ-साथ मनोरमा का घर भी डॉ. खन्ना के मन में बस गया। चाहे वह रोज़ाना की 'केसरी' हो या मनोरमा के माता-पिता की सिर पर स्कार्फ़ पहने तस्वीर, नरम चावल की रोटी हो या उकाड़ी मोदक का अर्पण; ये सभी चीज़ें रूप, ध्वनि, स्वाद और गंध के माध्यम से डॉ.

खन्ना के मन में समा गईं। उन्होंने अपनी प्रियतमा के लिए मराठी और मराठी संस्कृति का प्रेमपूर्वक अध्ययन करना शुरू किया। कुछ घटित हुआ या कुछ गलत हुआ, और यहाँ तक कि उनके मुँह से 'चायला' भी निकलने लगी। लेकिन चाहे उन्होंने कुछ भी कहा या किया हो, यह मूक प्रेम आगे नहीं बढ़ पाया। प्रेम के रेशमी धागे अध्ययन की उलझनों, अंतरजातीय, अंतरधार्मिक और अंतरप्रांतीय प्रेम के तनाव, घर की नाजुक स्थिति और माता-पिता के प्रति उनकी ज़िम्मेदारी के जाल में उलझ गए। मनोरमा के कुछ करने का तो सवाल ही नहीं था। वह एक लड़की थी; परंपरा और मानसिकता, सामाजिक नियम और घर के रीति-रिवाज यह तय करते थे कि पहल तो पुरुष ही करेगा।

परीक्षा का कार्यक्रम घोषित हुआ और डॉ. खन्ना चॉल छोड़कर पढ़ाई के लिए छात्रावास चले गए। वहाँ परीक्षा ज़ोरों से चल रही थी और यहाँ सब कुछ सुचारू रूप से चल रहा था। तभी मनोरमा के पिता अचानक गिर पड़े और उनका निधन हो गया। उनके दोनों मामा इंदौर और दिल्ली से आए। उन्होंने अपनी विधवा बहन की स्थिति को समझा। घर के मुखिया का देहांत हो चुका था। स्थिति पहले से ही विकट थी और ऊपर से घर में ऐसी बच्ची भी थी। अगर एक महीने में शुभ कार्य पूरा नहीं हुआ तो पूरे साल कुछ नहीं हो सकता था। तब दोनों मामाओं ने मनोरमा के लिए एक उपयुक्त जगह ढूंढी और पिता के देहांत के अठारहवें दिन उसका विवाह हो गया। खन्ना को यह सब तब समझ आया जब मनोरमा ने अपनी परीक्षाएँ पूरी कर लीं और एक सप्ताह बाद घर लौटी।

अब समय बीत चुका था। वह अपनी माँ को चिढ़ाता था; लेकिन माँ का सवाल था, 'जब घर-बार बिखर जाए, तो मैं अपना पंजाबी अंदाज़ कैसे कायम रखूँ?' बाद में, सब लोग इधर-उधर बिखर गए। एक साल के भीतर ही मनोरमा का घर तहलका मच गया। साठेबाई उसकी साथी बनने गई, लेकिन वह विधवा थी। डॉ. खन्ना भी बाल रोग विशेषज्ञ बन गए। उनके माता-पिता भी उनके साथ इंग्लैंड, कतर, इराक, पांडिचेरी आदि में रहे और फिलहाल ग्वालियर में वापस आ गए थे। इन सब यात्राओं में डॉ. खन्ना को शादी करने का समय नहीं मिला, या यूँ कहें कि उन्होंने शादी नहीं होने दी। मनोरमा की क्षणिक संगति में उन्हें जो अनुभूति हो रही थी, वैसी अनुभूति उन्हें किसी और स्त्री की संगति में भी नहीं हो रही थी।

आज यहाँ पहुँचते ही उनकी माँ ने मोबाइल पर एक अलग ही खबर दी। पच्चीस साल बाद साठेबाई ग्वालियर लौट आई थीं। मनोरमा दिल्ली में थीं। उनकी माँ ने उन्हें अपना फ़ोन नंबर भी दिया। धड़कते दिल से उन्होंने फ़ोन किया। मनोरमा की बेटी श्वेता ने फ़ोन उठाया। मनोरमा गाड़ी चला रही थीं। वह अपनी बेटी को बारहवीं कक्षा में छोड़ने जा रही थीं। जब उन्हें बताया गया कि किसका फ़ोन नंबर है, तो उन्होंने यह कहकर फ़ोन काट दिया, 'मम्मी बाद में कॉल करेंगी।' पाँच मिनट के भीतर मनोरमा का फ़ोन आ गया। उन्होंने मुश्किल से 'हाँ, बोलो' कहा और रोने लगीं, और अगले पंद्रह मिनट तक उनका रोना नहीं रुका। डॉ. खन्ना भी यहाँ रो रही थीं, मुस्कुरा रही थीं। जो वे एक-दूसरे से शब्दों में कभी व्यक्त नहीं कर पाई थीं, वह मोबाइल की गुनगुनाहट से साफ था। दो आत्माओं के आपस में गुंथे हुए धागे उलझ रहे थे। इस पूरी बातचीत में कोई शब्द नहीं थे। एक आत्मा लखनऊ के जेनेटिक्स सेंटर के लॉन में थी और दूसरी दिल्ली के किसी

पार्किंग स्थल में। काफी देर बाद दोनों को होश आया। उन्होंने एक-दूसरे के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की और बातचीत "आप जहां भी हों, खुश रहें" की शुभकामनाओं के साथ समाप्त हुई।
उन्होंने पहले कभी इतना हल्का और इतना सहज महसूस नहीं किया था। अपनी प्रेमिका को उसकी दुनिया में खुश देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया। वयस्कता में परिस्थितियाँ कितनी बदल जाती हैं! उस हरे-भरे मैदान पर, फिर सत्य परिवार का पूरा घर, अपने स्वाद, रंग और सुगंध के साथ, डॉ. खन्ना के मन को मोहने लगा। केसर और मुंडावला, नरम चावल और मोदक, ये सब अचानक उनके विचारों का विषय बन गए और उनमें मेरा श्राप, 'चायाला!' भी शामिल हो गया। इस 'चायाला' ने खन्ना के दिल को छू लिया और उन्होंने मुझे भी अपनी यादों के संगीत में शामिल कर लिया।
मेरे मन में यह सवाल उठा, मैं कौन हूँ, एक अजनबी, और यह आदमी मुझे अपना वह रहस्य क्यों बताएगा जो उसने पूरी जिंदगी छुपाए रखा है? मुझे नहीं पता, लेकिन अगले पंद्रह दिनों तक, आनुवंशिकी विभाग में पीढ़ियों से चले आ रहे डीएनए का उलझा हुआ जाल हर जगह छाया रहा, और इसने मुझे हर किसी की भूमिका का एहसास कराया।

•

नाना

वाई से साढ़े तीन घंटे तक धूल भरी, गड्ढों से भरी, मोड़ों वाली और धूप से तपती सड़क पर हमारी कार कटराज घाट से नीचे उतरती और मेरा छोटा भाई शशांक और मैं सांस रोककर इधर-उधर देखते कि कहीं हमें कोई रिक्शा या सुअर दिख जाए। रिक्शा दिखना इस बात का संकेत था कि हम पुणे पहुँच गए हैं, और सुअर... सुअर के बारे में मैं आपको बाद में बताऊंगा।

जब हमें रिक्शा दिखाई देता, तो हम सीट पर उछलने लगते और चिल्लाते, 'पुणे आ गए, पुणे आ गए!' जब तक कि रिक्शा बाजीराव रोड पार करके महाबैंक के पास से घूमकर तुलसीबाग स्थित महल के सामने नहीं रुक जाता। वहाँ पहुँचते ही हमारे शरीर में उत्साह की एक नई लहर दौड़ जाती। हम अपने बैग पकड़े हुए और लकड़ी की सीढ़ियों पर उछलते-कूदते अजोली कैंप में प्रवेश करते। दादी हमारा स्वागत करने के लिए वहाँ मौजूद होतीं, और हमारे दादाजी, नाना, अस्पताल में मरीजों की देखभाल कर रहे होते। अस्पताल भूतल पर था। लेकिन घर के एक खास कोण से हमें पता चल जाता कि वे अस्पताल में हैं या किसी से मिलने आए हैं। हम घर की खिड़की, अस्पताल के दरवाजे और नाना की कुर्सी से उन्हें देखते रहते; और नाना की जानी-पहचानी आवाज़ आती, "पीप, पीप!" उस आवाज़ के साथ ही हम समझ जाते कि अब हमने नाना की ज़िम्मेदारी ले ली है और नाना ने पूरी छुट्टी के लिए हमारी ज़िम्मेदारी ले ली है।

दिन की शुरुआत मुलाकात से होती थी। नाना अपनी पुरानी लैंडमास्टर कार में पुणे में घूमते, अलग-अलग मरीजों की जांच करते और हम उछलते-कूदते, 'नाना, नाना, जल्दी आइए' कहते रहते, जब तक कि नाना वापस कार में नहीं बैठ जाते। इस दौरान नाना की नजरें लगातार भटकती रहतीं - "...यह कौन सी सड़क है?"

"...यह बाजीराव रोड है।" हमारा कोरस

"...अब तुम यहाँ हो?"

"... तिलक रोड..."

हम वे जवाब देंगे जो हमें मिल सकते हैं। अगर उन्हें जवाब नहीं मिलते, तो हम अलग-अलग गाइडों की जगह ले लेंगे।

नानाजी हमें आस-पास की सड़कों, मूर्तियों, इमारतों आदि के बारे में विस्तार से जानकारी देते थे; बाबूराव सनस, सेनापति बापट, सावरकर से लेकर अलका चौक की घगरवाली, केईएम के सामने की मसेवाली, कोर्टहाउस के बगल में मजदूर की मूर्ति तक, वे हमें उनके व्यक्तित्व और मूर्तियों के बारे में बताते थे। एसएसपीएमएस के सामने शिवाजी की मूर्ति, ससून के सामने हुतात्मा स्तंभ जैसी जगहों पर, वे हमें उन्हें नीचे उतारकर चौथी मंजिल पर रखी जानकारी पढ़ने के लिए भी कहते थे। हमें इसकी आदत हो गई थी। गायकवाड़ वाडा, न्यू इंग्लिश स्कूल, फर्ग्यूसन कॉलेज आदि इतिहास की किताबों में बाद में आए। हमने पहले चौधरी वी. जोशी, एन.सी. फडके आदि के घर देखे और फिर किताबें। यहां तक कि जब हम पेशवा पार्क जाते थे, तो हम अकेशिया अरेबिका (मंगफेरा इंडिका) ढूंढते हुए घूमते थे। नानाजी हमें बिना बताए ही यह सिखाते थे। वे हमें संभाजी पार्क में एक्वेरियम दिखाने भी ले गए। मैंने न सिर्फ मछलियाँ देखीं, बल्कि मैंने उन्हें बाहर

बोर्ड पर लिखे "एक्वेरियम" शब्द में तीन अक्षर जोड़ना भी सिखाया... और जब मैं घर पहुँचा, तो मैंने इसे दस बार लिखा!

यह कहना मुश्किल था कि यह शिक्षा किस स्तर तक जाएगी। एक बार बाज़ार से ढेर सारे आम खरीदने के बाद, वह मार्टिका को दुकानों का दौरा कराने ले गया। उसे सब कुछ जानना ज़रूरी था, यही उसकी ज़िम्मेदारी थी। उस आदमी ने कहा, "जब मैं यहाँ से जाऊँगा, तो मुझे यहीं से खरीदना होगा!"

नाना का हास्यबोध बहुत तीखा था। उनके व्यंग्यात्मक टिप्पणियों को रोकने वाला कोई नहीं था। कोई नया व्यक्ति समझ ही नहीं पाता था कि नाना उसका मज़ाक उड़ा रहे हैं। कॉलेज में पढ़ते समय, एक बार मैं वाई से पुणे तक स्कूटर पर हवा की रफ्तार से पहुंचा। मेरी सारी शेखी बघारने के बाद नाना ने कहा, "तुम बहुत देर से पहुंचे होगे!"

हम खिलौने को उल्टा करने की कोशिश करते और नानी कहतीं, “अरे, ऐसे नहीं टूटता। मुझे दो। मैं तुम्हें दिखाती हूँ कि इसे ठीक से दो टुकड़ों में कैसे तोड़ते हैं।” फिर हम अपने वर्मून खिलौने को वापस उसकी जगह पर रख देते।

उनके अनुशासन के कारण खिलौने लंबे समय तक टिके रहे। चाबी वाला भालू, उछलती चिड़िया, ताजमहल, शिकारा, केरल का हाथी, लकड़ी का खलिहान और हाथी, याक की घंटी, चंदन का पगोडा, पानी पीने वाली गुड़िया, ट्रेन, शतरंज, लगोरी, रस्सी कूद आदि सभी हमारी माँ, चाचा और चाची के समय के थे। शायद ये नाना के बचपन के भी थे। कांच के पीछे बंद यह नवलनगरी हमारे लिए खुला था, लेकिन साथ में यह शर्त भी थी कि 'शर्तें लागू'! पास में कोई बड़ा व्यक्ति होना ज़रूरी था, एक बार में एक ही खिलौना निकालना होता था, चाबी सिर्फ एक बार और सावधानी से दी जाती थी, पहला खिलौना रखने के बाद दूसरा निकालना होता था, दूसरा रखने के बाद तीसरा... ये सभी नाना का अनुशासन था। यह अनुशासन हर जगह मौजूद था। सुबह उठते ही दस्ताने पहनना, मेज पर रखा सारा खाना खत्म करना, सारा खाना खा लेना, सीढ़ियों पर पैर पटकना नहीं, खिड़की से कूड़ा बाहर नहीं फेंकना, दोपहर में जब सब सो रहे हों तब हंगामा न करना...

आखिरी हिस्सा थोड़ा मुश्किल था; लेकिन उन्होंने इसका हल निकाल लिया था। दोपहर को सोने से पहले, वह हम दोनों को अपनी गोद में बिठाकर चिल्लाने का खेल खेलते थे। यह नाना का खास तरीका था। जैसे ही हम उनकी गोद में बैठते, नाना अपनी बुलंद आवाज़ में चिल्लाते, "आज शाम हम सरस बाग जा रहे हैं।"

फिर हम दोनों ने बेंबी के डंठल से चिल्लाकर कहा, "हाँ, हाँ!"

"हम वहां भेल खाने जा रहे हैं," नाना ने कहा।

“होह ऽऽ” हम

"हम वहां फव्वारा देखने जा रहे हैं, ठीक है?"

“हो ऽऽऽ”

"हम वहां घास पर लोटपोट होंगे।"

“हो ऽऽऽ”

यह तीखी बहस करीब आधे घंटे तक चलती रहती थी। फिर नाना कहते, “तुमने बहुत ज्यादा चिल्ला लिया है, है ना? अब मैं महाबलेश्वर जा रहा हूँ। मैं कोई दंगा नहीं करवाना चाहता।” हम सब परेशान हो जाते थे।

‘मैं महाबलेश्वर जा रहा हूँ’ नाना का खास जुमला था। गर्मी की दोपहर में भी घर के एक कोने में तेज़ हवा चलती थी। यही नाना का महाबलेश्वर था। यही नाना की सोने की पसंदीदा जगह थी। ऐसे और भी कई जुमले और मुहावरे थे। जैसे ही कोई कहता, ‘अरे, खाने वाले आपसे मिलने आए हैं’, नाना अपने हाथ में रखा खाना खत्म करके ऊपर खाने आ जाते। ‘मैं आज शाम अपने जान-पहचान वालों के घर जा रहा हूँ’, इसका मतलब होता था कि रास्ता पेठ स्थित उडुपी के घर में इडली-दोशा की दावत का इंतज़ाम है। इसके अलावा, दोजे (दोहलजेवन), बिडली (खराब इडली), किस्किट (ओवन से केक या बिस्किट के रूप में निकला व्यंजन), आलू वड़ा, आलू चिवड़ा जैसे छोटे-छोटे जुमले भी थे।

मुझे चिवड़ा याद आया, लक्ष्मीनारायण चिवड़ा से प्रेरणा लेकर मेरी दादी ने एक बार काजू, बादाम, किशमिश आदि डालकर एक बहुत ही बढ़िया चिवड़ा बनाया था। बेशक, मेरी दादी की नज़र में ये ढेर सारे सूखे मेवे नानी की नज़र में 'किस ट्री या लीफ' जैसे थे। फिर, जब नानी ने बड़े प्यार से पूछा, 'आपने लक्ष्मीनारायण चिवड़ा कैसे बनाया?' तो उन्होंने कहा, 'बहुत बढ़िया! भले ही यह लक्ष्मी-नारायण चिवड़ा न हो, इसे विट्ठल-रखुमाई की तरह इस्तेमाल करने में कोई दिक्कत नहीं है!'

इस तरह की छेड़छाड़ चलती ही रहती थी। लेकिन नाना की छेड़छाड़ नीरस नहीं थी। उसमें विविधता थी, हुनर था, उन्हें छेड़छाड़ करने का खास हुनर हासिल था। नाना के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को शब्दों में बयां करना मुश्किल है। 'देखते हैं तुम्हारी आइसक्रीम मीठी है या नहीं?' तो हम मुस्कुराते हुए आइसक्रीम खरीदते और खूब खाते। हम कितने कूल थे! 'मुझे चॉकलेट दे दो, मैं इसे ऐसी जगह रखूंगा जहां कोई और न ले सके', जिसका मतलब था कि नाना को चॉकलेट खराब होने का एहसास दिलाने के लिए एक चॉकलेट कुर्बान करनी पड़ती।

अगर हम हॉल में बातें कर रहे होते और हमें पानी चाहिए होता, तो हम अचानक कहते, “आपने क्या कहा? क्या आपको पानी चाहिए? मुझे दीजिए, मुझे दीजिए। आप कितनी दयालु हैं!” मैं- “नानी, मैंने कुछ नहीं कहा।” “अरे नहीं, मैंने अब साफ-साफ सुन लिया...जाओ, पानी ले आओ।” हम पानी लेने चले जाते।

“क्या आलू में नमक ज्यादा है?” दादी ने पूछा।

“अरे, नमक तो ठीक है। आलू गायब हैं!” नानी

यह मत पूछो कि क्या हम बड़े, पीले, गूदेदार आम को काटकर उसका रसदार गूदा मुंह में डालते हुए मुंह बनाते थे। हमारे बड़े-बुजुर्ग कहते थे, "...आम बिल्कुल मत खाओ, ये बहुत खट्टे होते हैं। तुम्हें ये बिल्कुल पसंद नहीं आएंगे, तुम इन्हें बर्दाश्त नहीं कर पाओगे। तुम्हारा पेट खराब हो जाएगा..." हम यह सोचकर आम खा लेते थे कि 'समझदार लोगों के लिए चेतावनी ही काफी है'। नानी बहुत खुश होती थीं।

नाशपाती काटते समय, नानी हर बच्चे को दो टुकड़े देतीं और छोटे शशांक से पूछतीं, “तुम्हें

कितने चाहिए?" शशांक कहता, "दस।" फिर नानी चुपचाप उसके दो टुकड़ों को दस टुकड़ों में काट देतीं और उसके सामने रख देतीं। शशांक खुश हो जाता।

जब भी शशांक और मैं आते, नाना चिल्लाते, 'दुगांवकर आ गए, दुगांवकर आ गए। दुगांवकर मतलब दुक्करगांवकर। क्योंकि हम इसी गांव से हैं, वाई से। हम ऐसे गांव से हैं जहां सूअर घूमते हैं, इसलिए दुगांवकर!' जैसे ही हम उन्हें दुगांवकर कहते सुनते, हम उनकी तरफ दौड़ पड़ते। लड़ाई शुरू हो जाती। नाना यही चाहते थे।

इसीलिए पुणे में घुसते ही हम सूअर ढूंढने लगते थे। अगर पुणे में कभी कोई सूअर दिख जाता, तो नाना भी दुगांवकर बन जाते। एक बार आते-आते हमने कटराज में सूअरों का एक बड़ा झुंड देखा। जब हमने नाना को यह खुशखबरी सुनाई, तो वे बोले, "अरे, वो गिरोह वाई से तुम्हारी जाँच करने आया था। मुझसे नहीं मिला। मैंने उनसे कहा, अब आओगे। आते ही मैं उन्हें तुरंत वापस भेज दूंगा। फिर वे वापस चले गए। आधा घंटा हो गया है। तुमने कटराज देखा!" यह जवाब हमारे लिए बिलकुल अप्रत्याशित था। अगर उन्हें इतना इंतज़ार करना था, तो वे किस तरह के नाना थे? उन्होंने तुरंत पद्मासन में बैठकर आँखें बंद कर लीं और प्रार्थना करने लगे। कैसी प्रार्थना थी उनकी 'शांतनु-शशांक वाई वापस चले जाएँ, शांतनु-शशांक वाई वापस चले जाएँ'। वे इसे इतनी ज़ोर से बुदबुदाते थे कि हम सुन सकें। आप बताइए, कौन सा स्वाभिमानी पोता अपने दादा के इस व्यवहार को बर्दाश्त करेगा? तब हम भी पद्मासन में बैठते, आंखें बंद करते और भक्त प्रह्लाद की तरह प्रार्थना करते, 'हमें नाना के साथ रहना है, हमें नाना के साथ रहना है' यह कहने की क्या आवश्यकता है कि ईश्वर की कृपा से हमारी प्रार्थनाएं हमेशा फलदायी होती थीं?

एक बार हमारी कार का एक्सीडेंट हो गया। उसकी एक बत्ती टूट गई और बोनट टेढ़ा हो गया। वाह! नाना को बहाना मिल गया। जब भी हम उन्हें देखते, वो जानबूझकर एक आँख बंद कर लेते और जीभ बाहर निकाल लेते। हम क्यों नहीं जानना चाहते थे कि वो हमारी प्यारी कार को पागल बना रहे हैं? हम तुरंत नाना को कुचल देते। आखिर में नाना ज़मीन पर लोटते और 'चीट, चीट' कहते हुए खुद को छुड़ा लेते। हमें लगा कि हमने नाना का अच्छा-खासा बोनट तोड़ दिया है। अब नाना फिर कभी हमारे रास्ते में नहीं आना चाहेंगे। लेकिन असल में, यही अगले झगड़े की शुरुआत थी। इतिहास बताता है कि पहला विश्व युद्ध दूसरे विश्व युद्ध का एक अहम कारण था। और बात ये है कि जैसे ही ये लड़ाई खत्म होती, नाना अपने पास आने वाले पहले व्यक्ति के सामने गंभीर चेहरे के साथ बैठ जाते। वो नाटकीय ढंग से अपने हाथ-पैर मलने लगते। ये नाटक तब तक चलता रहता जब तक वो आदमी पूछता, 'क्या डॉक्टर साहब, आपके पैर में दर्द हो रहा है?' जैसे ही ये सवाल पूछा जाता, नाना हंसने लगते। गंभीर चेहरे और कोमल आवाज़ में नानी कहतीं, "अरे, मैं क्या कहूँ... दो पोते आ गए हैं... वे सुबह-शाम मुझे बहुत परेशान करते हैं... ज़रा भी रहम नहीं दिखाते... देखो, यहाँ तो अंधेरा छा गया है... लेकिन अब हम क्या कर सकते हैं... हमारे अपने पोते-पोती, हमें यह सब सहना ही पड़ेगा..." हम ये सब दरवाज़े के पीछे से सुनते रहते। ज़ाहिर है, ये सारा ड्रामा सिर्फ़ हमारे सुनने की वजह से चलता रहता। अगर हम दरवाज़े के पीछे से डांटते, तो नानी और भी ज़्यादा गुस्सा हो जातीं। तब हम कैसे कहते, "...अरे, आपको यकीन नहीं होगा, लेकिन देखो वे दरवाज़े के पीछे कितने शांत खड़े हैं। लेकिन ये सब तो बस

आप ही हैं। आपके जाने के बाद, मुझे नहीं लगता कि कुछ भी सच होगा!" अब ये मज़ेदार नज़ारा देखकर मेहमान भी ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगते। हमारा गुस्सा और बढ़ जाता। सज्जन मुस्कुराते हुए विदा लेते हुए बोले, "हमने ज़रूर नानी पर हमला कर दिया होगा।" नानी अपने पोते-पोतियों के साथ फिर से मस्ती करने के लिए बेताब रही होंगी।

नाना का जुझारू जज़्बा न सिर्फ जनता के लिए था, बल्कि उनके पोते-पोतियों के लिए भी। वे जनसंघ की ओर से पुणे नगर निगम चुनाव लड़ रहे थे। हम दोनों को चुनाव प्रचार में साथ रहना ज़रूरी था। हम गले में थैले, सीने पर बैज और हाथों में पर्चे लेकर घर-घर जाते थे। हमारा नारा था, 'नाना को वोट दो, हमें खाने दो।' लोगों ने हम दोनों को वोट दिया। हमने एक समूह बनाया और नाना पार्षद बन गए। किसी ने कहा, "नाना, अब अपनी कार को रंगवा लो।" उन दिनों तो कार को रंगवाना भी प्रतिष्ठा की बात मानी जाती थी। नाना ने जवाब दिया, "मैंने पार्षद बनने की वजह से कार नहीं खरीदी और न ही कार की वजह से पार्षद बना हूँ। रंग कोई बात नहीं।"

नाना के अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में पढ़ने के फैसले की सराहना कौन करेगा? लेकिन साथ ही, इस बात से कौन नाराज़ होगा कि हम मराठी में नहीं पढ़ते? फिर बातचीत शुरू हो जाएगी...

"यह बढ़ता क्यों है?" दादी माँ

"नहीं।" हम

"अरे नहीं, बात ये नहीं है। करी से तुम्हारा क्या मतलब है? सोचो, क्या छाछ का सूप उग सकता है, ताकि लोग उसे खा सकें!" नानी

फिर अचानक हमें छाछ का सूप पीने की तीव्र इच्छा होने लगती।

'आभाल वजलम धदद धूम, वर सुतला सो सो सम, पौस अला धो धो धो, पानी वयले सो सो सो' नाना चक्कर का बच्चों का गीत है। 'आकाश वजलम धदद धूम; हवा सो सो सम, बारिश सो सो सो, पानी सो सो सो'। इतना ही हमारे लिए काफी चेतावनी होगी।

एक बार छुट्टियों में नाना वाइला आए। देखिए, छुट्टियों में हम दोनों ने घर पर दो छोटे-मोटे काम शुरू किए। हमने किताबों के संग्रह से 'सरस्वती वाचनालय' नाम की किताब निकाली और एक खाली कमरे में मूसल, ओखली, डंडा, रस्सी आदि की मदद से व्यायामशाला बना ली। साथ ही 'हनुमान व्यायाम मंदिर' का बोर्ड भी लगा दिया। आने वाले दोस्तों से हमने कुछ पैसे भी इकट्ठा किए। हमारा उत्साह देखकर नाना हैरान रह गए। कई दिनों तक हम आने-जाने वालों को अपने काम के बारे में बताते रहे। हमारे पास सिर्फ एक गाय थी। नाना हमेशा गलती से, जी हाँ, गलती से 'हनुमान वाचनालय' और 'सरस्वती व्यायामशाला' बोल देते थे! अपनी इस रचनात्मक नामकरण योजना को बर्बाद होते देख हम बहुत नाराज़ हुए। हमने उन्हें प्यार से समझाया और बार-बार उनसे पूछा भी; लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। नाना कभी भी अपनी इस गलती को सुधार नहीं पाए।

बेशक, हम मन ही मन इंतज़ार करते थे कि नानी कब हमें चिढ़ाएँगी और नानी भी मन ही मन इंतज़ार करती थीं कि हम कब इस बात को भूल जाएँगे। एक बार, एक मीटिंग के दौरान, नानी ने किसी वजह से कुछ भी नहीं कहा। हम दोनों इतने नाराज़ हो गए कि आख़िरकार हमने बोल ही दिया, "नानी हमें नहीं चिढ़ातीं।"

नानी की ये लगातार चलने वाली बकवास, असल में नानी की ही बकवास, कभी खत्म नहीं होती थी। इसलिए बोर होने का तो सवाल ही नहीं उठता था। अगर मैं गलती से भी कह देती कि मुझे बोरियत हो रही है, तो नानी कहतीं, "मेरे पास दवा है!" और कोने में लगी कील की तरफ इशारा करतीं। पता नहीं क्यों, लेकिन वहाँ एक हंटर कील टंगी हुई थी।

जैसे नाना घर पर हमेशा जोश से भरे रहते थे, वैसे ही यात्राओं पर भी उनका उत्साह बरकरार रहता था। नाना के लिए 'कभी कोई नीरस पल नहीं' वाली कहावत बिल्कुल सच थी। उन दिनों छोटे बच्चों के साथ यात्रा करना बड़ों के लिए भी एक चुनौती होती थी। लेकिन यात्राओं के दौरान भी नाना तरह-तरह के खेल ढूंढ लेते और हमारा मनोरंजन करते रहते। कभी वो गाड़ियों की नंबर प्लेट के नंबरों को झटपट जोड़ देते, तो कभी शर्त लगा लेते कि अगला नंबर किस गाड़ी का होगा, एक का या एक से ज़्यादा का। इसलिए हम नाना के साथ यात्रा करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे।

नाना का कद-काठी अच्छा और लंबा था। उन पर हर तरह का पहनावा जंचता था। वे संघ की वर्दी में ही संघ शाखा जाते थे। कभी-कभी वे कमीज़ और पैंट पहनते थे और रविवार को वे खास भारतीय पोशाक पहनते थे - ढीली सफेद धोती, कुर्ता, जैकेट आदि। उनकी आवाज़ भी उनके शरीर के अनुरूप ही थी। खरीदारी भी वैसी ही थी। उन्हें फल बहुत पसंद थे। इसलिए फल दर्जन के हिसाब से नहीं, बल्कि टोकरी भर खरीदे जाते थे। नाना के पास हमेशा हर तरह के बेहतरीन फल उपलब्ध रहते थे। उनका खाना भी सस्ता, स्वादिष्ट और बिना किसी झिझक के होता था। वे अपने लिए एक बच्चे जितना गोंद का लड्डू खाते थे। उन्हें आमरसा के लिए कटोरी की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। रविवार की शामें परिवार के साथ घूमने-फिरने के लिए आरक्षित होती थीं। हम किसी बगीचे में जाकर खेलते और खाते थे। हम जल्दी-जल्दी चटाई, पानी, मेमना तैयार करते, प्लेट, बर्तन आदि सब कुछ पैक करते और गाड़ी में लादते थे। दो-तीन घंटे की थकान के बाद हम घर लौटते थे।

नाना को संगीत रंगमंच से बहुत लगाव था। अस्पताल से छुट्टी मिलते ही वे रात के शो के लिए दौड़ पड़ते थे और अंतराल में कार में बैठकर कुछ खा लेते थे। उन्हें 'सौभद्रा' नाटक याद था। उनका मानना था कि जो भी चीज़ नाना को प्रिय है, वह उनके पोते-पोतियों को भी प्रिय होनी चाहिए। फिर उन्होंने मुझे 'सौभद्रा' नाटक दिखाया। मैं सिर्फ नाटक देख ही नहीं सकता था, मुझे वह पसंद आना चाहिए था; और सिर्फ पसंद आना ही काफी नहीं था, मुझे उस पर गर्व होना चाहिए था। सौभद्रा की कहानी को समझने की भी मेरी समझ नहीं थी, तो मैं उसके सांस्कृतिक महत्व को कैसे समझ सकता था? लेकिन नाना के गाँव में भी ऐसा ही था। उन्होंने मेरे साथ उस नाटक का भरपूर आनंद लिया। उन्होंने मुझे पूरी कहानी सुनाई, संवादों के माध्यम से दिखाया, गीतों की व्याख्या की। उन्होंने मेरे मन में यह बात बिठा दी कि हम किसी भव्य, अलौकिक अनुभव से गुजरने वाले हैं। मैंने नाना के साथ वह नाटक देखा, लेकिन मुझे कुछ भी समझ नहीं आया। थिएटर में मेरे कानों में भिनभिनाते मच्छर और इंटरवल के दौरान बीवी की महक, ये दो ही यादें आज भी ताज़ा हैं। लेकिन नाना का इससे कोई लेना-देना नहीं था। उन्होंने अपने पोते को सौभद्रा दिखाई और उनके पोते ने बिना सोए उसे देखा, उनकी नज़र में यही एक बड़ी उपलब्धि

थी। जब वो घर आते हैं, तो मुझसे कहते हैं, “जो तुमने देखा वो कुछ भी नहीं है। ये गंधर्वों का असली नाटक है। मैं भी इसे देखता हूँ, ये क्या है, ये तो एक चाल है। मुझे ‘ये’ देखना है और ‘वो’ याद रखना है!”

मुझे सौभद्रा से एक और बात याद है। मंच की बत्तियाँ भी पात्रों की गतिविधियों के साथ जलती-बुझती थीं। योजना यह थी कि पात्रों के लिए प्रकाश होगा, बाकी सब जगह अंधेरा रहेगा। नाना के घर में घूमते हुए मैंने भी यही अनुभव किया। एक नियम था कि जिन कमरों में कोई न हो, वहाँ बत्तियाँ नहीं जलानी चाहिए। इसलिए जब आप हॉल से अंदर के कमरे में जाते, तो हॉल की बत्तियाँ बंद कर देते और कमरे की बत्तियाँ जला देते। जब आप बाहर आते, तो इसका उल्टा करते। एक और नियम था कि बत्तियाँ तभी जलानी चाहिए जब कमरे में आपकी उपस्थिति आवश्यक हो। यानी, जब आप 'पढ़े-पर्वच' कहते, तो बत्तियाँ बंद कर दी जातीं और ताश खेलते समय फिर से जला दी जातीं। जब आप खिड़की से गली में हो रही हलचल देखते, तो बत्तियाँ बंद कर दी जातीं। मुझे प्रकाश का आपके साथ चलना बहुत नाटकीय लगा। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं मंच पर प्रवेश कर रहा हूँ।

मुझे लगता है कि नाना को जितना प्यार मिला, उतना किसी को नहीं मिला। मैं उनका पहला पोता हूँ, और उनकी बेटी का बेटा हूँ; और यह उनका पहला दादा बनने का अनुभव है। इसलिए हमने एक-दूसरे के साथ हर पहला अनुभव साझा किया। उन्होंने अपने दादा बनने का आनंद लिया और मैंने भी। उनके बोलने और हावभाव से उनके पहले दादा बनने की खुशी झलकती थी। वे मुझे अपनी गोद में बिठाते और इतनी ज़ोर से गले लगाते कि साँस लेना मुश्किल हो जाता था।

बाद में हम बड़े हो गए। नाना भी बड़े हो गए। वे थोड़े लापरवाह हो गए। वे भ्रमित हो गए। एक दिन अचानक उनका मानसिक संतुलन बिगड़ गया और कुछ ही दिनों में सब कुछ खत्म हो गया। हालांकि नाना का जाना अप्रत्याशित नहीं था, फिर भी दुखद था। लेकिन नाना ने इतनी खुशियाँ दीं कि जब नाना का नाम लिया, तो कई सुखद यादों की लहरें उमड़ने लगीं। उनकी बातों, आवाज़, मस्ती, खेल, चुटकुलों की सारी यादें धीरे-धीरे मेरे दिल को भिगोने लगीं। मैं अब भी बच्चा था... पीठ पर सामान का थैला लिए, मैं लकड़ी की सीढ़ियों पर ज़ोर-ज़ोर से कदम रखते हुए चढ़ता हूँ, और नाना की जानी-पहचानी आवाज़ मेरे कानों में गूंजती है, 'पेशाब करो!'

•

चक्रधर

• 'महोदय! प्रणाम!' वह वहाँ खड़े थे, थोड़ा झुककर, विनम्रता से कार का दरवाजा खोल रहे थे। वह मेरे दोस्त के ड्राइवर थे। मेरे दोस्त ने मुझे एक लेक्चर के लिए बुलाया था और मेरी कार में कुछ खराबी होने के कारण उन्होंने अपनी कार और ड्राइवर को भेजा था। वह वहाँ थे। सबसे पहले मेरी नज़र उनकी कम लंबाई पर पड़ी। वह बहुत छोटे कद के थे। उनकी बाहें कमज़ोर थीं, उनके पैर कमज़ोर थे, उनकी गर्दन भी कमज़ोर थी। उनका सिर मानो कंधों से जुड़ा हुआ था। वह पूरी दुनिया को देख रहे थे, सिर्फ़ मुझे नहीं। वह स्टाइलिश थे। बढ़िया कमीज़, पैंट, जूते, स्वेटर... और हाँ, उन्होंने टाई भी पहनी हुई थी। वह मुझसे ज़्यादा स्मार्ट लग रहे थे। शायद इसलिए कि सब कुछ इतना साफ़-सुथरा था, वह स्कूल से निकले किसी लड़के की तरह लग रहे थे। वह थके हुए लग रहे थे। लेकिन उतने ही उत्साही भी। कौन जाने उनके पास ड्राइविंग लाइसेंस भी था या नहीं। लेकिन अब जब मेरे दोस्त ने कहा कि उन्होंने मुझे भेजा है, तो मैंने कुछ नहीं पूछा।

"सर, साष्टांग नमस्कार!"

"आं?"

"सर, साष्टांग नमस्कार. दंडवत सर."

"नमस्कार।" मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

"महोदय!" एक बार फिर, उनका शाब्दिक प्रणाम।

"सर, मैं आपके दोस्त का ड्राइवर हूँ।" अब अंग्रेजी में बोलते हुए गाड़ी अंदर आई! जल्दी से मेरा लैपटॉप पिछली सीट पर रखकर, वह दरवाजे पर वापस आया, झुककर बोला,

"मेरा नाम चक्रधर है। कृपया गाड़ी में बैठिए, महोदय।" मुझे यह थोड़ा हास्यास्पद लगा। जैसे ही मैं गाड़ी में बैठा, वह आदमी उछलकर गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी में बैठते ही वह बड़ी सहजता से गाड़ी से उतर गया और गाड़ी लेकर चला गया।

"सर, क्या मैं आपसे एक प्रश्न पूछ सकता हूँ?"

"हाँ, मुझे ऐसा ही लगता है।" मैं एकदम से चौंक गया। मुझे बिल्कुल भी अंदाजा नहीं था कि आगे क्या होने वाला है।

"सर, क्या आप खुश हैं?"

"ओह?" बिलकुल अप्रत्याशित सवाल। मुझे हमारा 'दुनिया का सबसे खुश इंसान कौन है?' वाला सवाल और 'खुश इंसान का पहनावा' याद आ गया। मैं नंगा तो नहीं था, मैंने एक बढ़िया 'एडीडास' टी-शर्ट और ब्लेज़र पहना हुआ था। इसका मतलब यह नहीं कि मैं खुश हूँ। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या जवाब दूँ। लेकिन मैं किसी अजनबी ड्राइवर को कैसे कह सकता था कि 'मैं खुश नहीं हूँ'? आखिरकार, मैंने उल्टा सवाल पूछना शुरू किया – "क्या मैं खुश हूँ? हाँ, मैं बहुत खुश हूँ।" मैंने 'बहुत खुश' पर ज़ोर देते हुए कहा। हाँ, मुझे यह नहीं कहना चाहिए कि मैं पूरी तरह खुश हूँ। अगर कोई इतना लापरवाह हो, तो वह रास्ते में किसी सुनसान जगह पर गाड़ी रोककर मुझे मार डालेगा। किसी के दिमाग में कौन सा शैतान छिपा हो, यह कोई नहीं जानता।

"शैतान की पुकारों पर ध्यान न दें, महोदय। आपकी समृद्धि हो।"

हे भगवान! इस शैतान ने भी अपनी सजा काट ली! इसे कैसे पता चला कि मेरे मन में क्या चल रहा था? यह तो बिल्कुल मूर्ख लगता है!

“महाराज, अपनी गांड फटने दीजिए! ठीक वैसे ही जैसे यहोवा की गांड फटी थी!”

क्या? मेरे गधे को उड़ा दूँ? लेकिन मेरे पास तो गधा है ही नहीं... और ये यहोवा कौन है? जाने दो, कोई तो इस जंगल का देवता होगा। अगर मैं और पूछता, तो वो और भी ज़्यादा मुसीबत में होने का नाटक करता, इसलिए मैं चुप रहा। लेकिन कुल मिलाकर, वो आदमी दिलचस्प लग रहा था। वो गाड़ी चलाने के लिए एक ऊँची सीट पर गद्दी लगाकर बैठा था। उसमें एक बैकरेस्ट भी था। नहीं तो उसके पैर ठीक से नीचे नहीं पहुँच पाते।

जब मैंने कुछ नहीं कहा, तो वह कार की रफ्तार से बोलने लगा। “महोदय, यदि आप बहुत दुखी हैं, तो दयालु हृदय, स्नेह, कोमलता, नम्रता और धैर्य रखें; एक-दूसरे का साथ दें और यदि किसी से कोई शिकायत हो तो एक-दूसरे को क्षमा कर दें। तब आप पूरी तरह से सुखी होंगे। भगवान भी आपसे ईर्ष्या करेंगे। भगवान की कृपा सदा आप पर बनी रहे।” पहली ही सांस में उन्होंने मुझे बहुत दुखी समझा और मुझे आशीर्वाद भी दिया। मेरे मन में यह सवाल उठ रहा था कि क्या कौवे के श्राप से गाय नहीं मरती, लेकिन क्या इस भिखारी के आशीर्वाद से गधा गर्भवती हो जाता है? लेकिन वह रुका नहीं। वह लगातार बोलता रहा। शायद उसने कई छपे हुए अनुच्छेद याद कर रखे थे। उसे व्याकरण, विशेषण आदि में आनंद आता था।

“महोदय, शब्दों का व्यक्ति की चेतना पर गहरा प्रभाव पड़ता है। विशेषकर जब ईश्वर की शरण में जाने की बात आती है, तो अक्सर कहा जाता है कि प्रार्थना भाग्य और जीवन बदल सकती है।

यह सचमुच सत्य है। यह भी सत्य है कि एक विश्वासी प्रार्थना की याचना करता है। वह एक सशक्त प्रार्थना चाहता है। क्या यह सही नहीं है, महोदय?"

मैं इतना घबरा गया था कि दबी हुई आवाज़ में बस 'ठीक है' ही कह पाया; लेकिन उसकी बकबक लगातार जारी रही। मैंने सोने का नाटक किया, करवट बदली और कार में पड़े एक पुराने अखबार के पन्ने पलटने लगा; लेकिन उस बदमाश को रोकना नामुमकिन था।

"महोदय, भौतिक वस्तुओं की माँगों के बारे में अक्सर पूछताछ की जाती है। अंततः, एक विश्वासी के लिए, आंतरिक सुख भौतिक सुख से अधिक महत्वपूर्ण होता है।"

"क्या?"

"महोदय, समृद्धि, आंतरिक समृद्धि।"

"जी हां, जी हां। ठीक है।"

"महोदय, याद रखिए, सामान्यतः सब कुछ सत्य है और आध्यात्मिक विकास पृथ्वी पर उपलब्ध उन्नत सुविधाओं पर आधारित है। सुख के लिए व्यक्ति को क्या चाहिए, महोदय? एक, पौष्टिक भोजन; दो, पर्याप्त नींद और तीन, एक स्वस्थ और आरामदायक घर! इस जटिल कार्य में, ईश्वर से प्रार्थना करना न भूलें, महोदय, प्रार्थना करना न भूलें। प्रार्थना करना कभी न भूलें।" काफी देर बाद, वे अंततः सभा में आए। जैसे कोई पात्र गाली देते हुए विदा ले रहा हो, वैसे ही वे एक ही वाक्य को तीन बार दोहरा रहे थे। मैंने सोचा, अब तो बात खत्म हो गई; लेकिन अरे! उनका मुद्दा अभी खत्म नहीं हुआ था। "अपनी समृद्धि और कल्याण के लिए प्रार्थना करना आम बात है। लेकिन, सभी आत्माओं के उद्धार की प्रार्थना को प्राथमिकता देनी चाहिए। इस प्राथमिकता को देकर, आपको लोगों से प्रेम करना चाहिए, महोदय, आपको लोगों से प्रेम करना चाहिए, उनसे प्रेम करना चाहिए।" फिर से, तीन बार।

मैंने पहली बार एक ही सांस में इतना उपदेश सुना है। मैं सुनते-सुनते थक गई हूँ, लेकिन उसकी निगाहें हटने को तैयार नहीं हैं। मैं उसे पूरी तरह से अनदेखा करती हूँ और अपना मुंह मोबाइल पर रख लेती हूँ।

"सर, क्या मैं आपसे कुछ कह सकता हूँ?"

"हम्म।"

"जब ज़िंदगी नाम की स्क्रीन पर बैटरी कम हो और रिश्तेदार नाम का चार्जर न मिले, तो पावर बैंक बनकर मदद करने वाला सच्चा दोस्त होता है!" उसने एक और नई कहावत सुना दी। मोबाइल में मुंह घुसाने के बाद भी मैं चैन से नहीं बैठा। मैं स्तब्ध रह गया।

"क्या?"

फिर उन्होंने मुझे आधे घंटे तक दोस्ती के विषय पर उपदेश दिया। जब तक हम अपनी मंज़िल तक नहीं पहुँच गए, वे मेरे साथ रहे। वे तभी चुप हुए जब हम आखिरकार उनके दोस्त के पास पहुँच गए। फिर भी, कार पार्क करते समय उन्होंने एक कहावत कही: "महोदय, मिट्टी के बर्तनों और दोस्ती का महत्व केवल बनाने वाले ही जानते हैं, बाकी लोग नहीं!"

मेरे दोस्त के सवाल, "क्या, हमारे ड्राइवर-जासूस ने मुझे परेशान नहीं किया?" के लहजे से ही मैं समझ गया था कि उसे इस बात की पूरी जानकारी थी कि उसके ड्राइवर ने मुझे किस तरह और

किस हद तक परेशान किया था।

“माफ़ करना, लेकिन तुमने बहुत सलाह दे दी। जाने दो। मालिक को सलाह देने की यह परंपरा महाभारत काल से चली आ रही है! आख़िरकार, ‘वह’ भी ठेलागाड़ी चालक है और मैं भी ठेलागाड़ी चालक हूँ।” (मैं)।

हम दोनों दिल खोलकर हँसे। ‘चक्रधर’ थोड़ा शर्मिंदा था, लेकिन हँसा तो सही। वह एक दोस्त के यहाँ ड्राइवर, वार्ड बॉय, भाई, आदि के रूप में नया-नया आया था। वह बिल्कुल नौसिखिया था। दो हफ़्तों के भीतर ही वह अचानक मेरे पास आया। उसे नौकरी पर रखने के लिए। वह अपने पैतृक गाँव में नहीं रहना चाहता था। किसी बात पर झगड़ा हुआ था। मैंने एक दोस्त के ज़रिए उसे मना लिया और इस शर्त पर कि वह फालतू बातें नहीं करेगा, मैंने उसे नौकरी पर रख लिया। वह मुफ्तखोर बनकर आया था। उसने कहा कि वह जो भी काम कर सकता है, करेगा; और अगले दस सालों तक उसने सचमुच हर काम किया। शिक्षा की बात करें तो वह दसवीं कक्षा में फेल हो गया था, लेकिन उसने अपनी बुद्धिमत्ता से अस्पताल के अधिकांश कामों में महारत हासिल कर ली।

काम शुरू करने के ठीक अगले दिन ही उन्होंने मुझे सीधे फोन किया - "सर, वो मंगा की महिला हैं, उन्हें कल रात उल्टी हुई थी। और कोलहाट्या की वो महिला मुझे सलाइन दे रही हैं, वो घर जाना चाहती हैं।"

“कोलहाट्या की वो औरत कौन है?” मैंने पूछा। उसके लिए नाम या बीमारी से ज़्यादा जाति ज़रूरी थी। “कौन डिस्चार्ज करवाना चाहता है? क्या वो लक्ष्मीबाई हैं?”

"वो नहीं है। वो कसारा से है...! मैं उसे कुडालकर बुला रहा हूँ। उसे छुट्टी चाहिए। आज उसकी शनि के बुध ग्रह पर पूजा है।"

मैंने इस जाति-आधारित प्रक्रिया के बारे में पहली बार सुना था। पहली ही रात, पहले ही प्रयास में, उन्हें मरीज की जाति और नस्ल दोनों का पता चल गया था।

"ठीक है, मैं वहाँ पहुँचकर देख लूँगा। वैसे, पंचपुर के मरीज़ का बच्चा कैसा है? कल उसे पानी की कमी हो गई थी।"

"वह बहुत ही प्यारा है। ऐसा लग रहा है जैसे उसका रोना बंद हो गया हो। पूरी रात मैंने उस बच्चे को सिर्फ चीनी, नमक और पानी दिया। उसकी माँ ने उसका अच्छे से ख्याल रखा।"

फिर भी, मुझे लगा कि इस आदमी के बोलने के तरीके में कुछ अलग है; लेकिन अब तक मुझे समझ नहीं आया था कि वह क्या है। अचानक मेरे दिमाग में एक बात आई। उसकी भाषा में कुछ खास शब्द थे: लेकरू, उपासना, प्रतिपाल। उसने ये शब्द कहाँ से सीखे थे, यह अगले ही वाक्य में पता चल गया: "कल उनका त्योहार है, है ना? चलिए, उसे छोड़ देते हैं, महोदय। वह हममें से ही एक है, है ना?"

"आप कैसे हैं?"

“यह तो ईसाई धर्म के अनुरूप है!”

"कल इतवार है"

"इसीलिए तो, महोदय!"

"आपका क्या मतलब है?"
“कल ‘पाम संडे’ है, महोदय। जब प्रभु यीशु यरूशलेम में प्रवेश किया, तो वहाँ की भीड़ ने अपने हाथों में ताड़ की डालियाँ लेकर ‘होसन्ना, होसन्ना’ का नारा लगाया। उन्होंने कहा, ‘धन्य है वह राजा जो प्रभु के नाम से आता है!’ विजयी राजा घोड़े पर सवार थे, परन्तु प्रभु गधे के बच्चे पर सवार थे। यह उनकी विनम्रता का प्रतीक है। हमारा पवित्र सप्ताह इसी दिन से शुरू होता है। इस सप्ताह हम गुड फ्राइडे, मौंडी थर्सडे, ईस्टर संडे और फिग मंडे मनाते हैं। होसन्ना, होसन्ना, महोदय!”
"क्या?"
“होसान्ना, होसान्ना!”
मैं समझ गया, लेकिन इसका क्या मतलब है?
“धन्य है वह राजा जो प्रभु के नाम से आता है!” उन्होंने कहा और अपना उपदेश शुरू किया।
“यीशु और उसके शिष्य यरूशलेम के पास बेथपेज में थे, और वे बेथपेज गांव से एक बछड़ा लाए।”
“ठीक है! ‘वह’ यहोवा का मतलब ‘यह’ यहोवा है?” अचानक मुझे यहोवा याद आया, उस गधे का मालिक जिसकी गर्दन टूट गई थी।
"क्या सिर?"
"कुछ नहीं। मैं अपने राउंड पूरे करने के बाद आपको छुट्टी दे दूंगा।"
जब मैंने उसे यह कहते सुना तो मुझे हंसी आ गई। यह उसकी मातृभाषा नहीं बल्कि एक विदेशी भाषा थी। परमेश्वर के वचन का शाब्दिक अनुवाद किया गया था, इसलिए शब्द पूरी तरह से विकृत थे। वह हमेशा कहता था, 'मैं विद्वान नहीं हूँ, लेकिन मुझे मुक्ति मिली है'; लेकिन यह केवल पढ़ना था, अध्ययन नहीं। एकतरफा, ईसाई, सतही पठन। पढ़ना, रटना और रटना।
लेकिन वह बुद्धिमान था। उसे बस मौका नहीं मिला। जैसे ही मुझे मौका मिला, उसने हर संभव कौशल हासिल कर लिया। वह ड्राइवर बनकर आया। फिर उसने एक्स-रे सीखा और एक्स-रे लेने लगा, प्रयोगशाला का काम सीखा और वहां मदद करने लगा, ऑपरेशन में सहायता करने लगा। मैंने एंडोस्कोप चलाना सीखा। इस तरह उसने इसकी बारीकियां सीख लीं। उसने पूरी लगन से काम किया। बिलकुल त्रुटिहीन तरीके से। महत्वपूर्ण बात यह है कि अगर उससे कोई गलती होती, तो वह उसे स्वीकार करता। वह अपनी गलती एक नोटबुक में लिखता। यह ज्यादातर ईसाई रीति-रिवाजों का परिणाम था। वह मुझे हर दो-तीन महीने में नोटबुक दिखाता, माफी मांगता। वह और सवाल पूछता और मुझसे और सिखाने को कहता। जब कोई मरीज उसे डॉ. चक्रधर कहकर बुलाता, तो वह बहुत खुश होता। उसने अपने पैसों से स्टेथोस्कोप और थर्मामीटर खरीदा था। मुझे पूरा विश्वास था कि अगर उसने समय पर सीख लिया होता, तो वह एक बहुत अच्छा डॉक्टर बनता।
जल्द ही उन्होंने वही किया जो कई डॉक्टर करते हैं। उन्होंने अपने पेशे का इस्तेमाल एक नर्स को मनाने और उससे शादी करने के लिए किया। वे परिवार नियोजन और गर्भपात के घोर विरोधी थे। बच्चे तो भगवान का उपहार हैं...! फिर आगे क्या हुआ? शादी के चार साल के भीतर ही उनकी

चार बेटियाँ हुईं - एक के बाद एक। उन्होंने एक पिता के रूप में पारंपरिक व्यवहार अपना लिया। हर बेटी के जन्म के साथ यह व्यवहार और भी सख्त होता गया। उनका चेहरा हमेशा चिंता, लाचारी और लड़खड़ाती वाणी से भरा रहता था, और अगर उन्हें कुछ चाहिए होता तो वे इतने विनम्र हो जाते कि कभी-कभी गुस्सा भी हो जाते थे। वे लगातार सोचते रहते थे कि कहीं उन्हें कुछ मुफ्त में तो नहीं मिल रहा। पुराने कपड़े, कागज, कप, जो कुछ भी मिल जाए। जब भी उन्हें कोई बेकार चीज नजर आती, उनकी लालची निगाहें उस पर टिक जातीं। ऊन की चटाई, टोकरी, प्लास्टिक की चादरें - कुछ भी उनके लिए ठीक रहता। वे पूछते, "महोदय, क्या आपको इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी?"

तो सवाल यह है कि क्या हमें इसे स्वीकार करना चाहिए या इसे अपना लेना चाहिए?

हम कहते, 'हाँ, मुझे इसकी ज़रूरत पड़ेगी', और उसका हमेशा यही जवाब होता, 'जब ज़रूरत न हो तो बता देना, मैं ले लूँगा। लड़कियों को इसकी ज़रूरत पड़ेगी।' लड़कियों के लिए उसे जो भी चाहिए होता। जब भी हम बाहर जाते, कुछ भी खरीदना चोरी करने जैसा लगता था। उसकी उम्मीद भरी निगाहें लगातार हमारे पीछे घूमती रहतीं, मानो हमारी पीठ पर चल रही हों। उसका रवैया हमेशा असंतुष्ट रहता था।

क्रूस पर रहते हुए परमेश्वर के पुत्र को अपने पुत्रहीन होने का कितना कष्ट सहना पड़ा होगा। अगर उनकी गाय बैल बन गई, तो भला कौन उसकी प्रशंसा करेगा! उस बैल की प्रशंसा तो वैसे ही करनी चाहिए जैसे अपने पुत्र की... उसके सिर पर चाँद है। वह चतुर और चंचल है। वह बहुत बुद्धिमान है। आज वह ऐसे दौड़ा। आज उसने खूब खाया। आज उसने ऐसी फुफकार मारी। आज उसने गुड़ खाया। आज उसके पैर में काँटा चुभ गया। बेन्दरा सबसे सुंदर लग रहा था। आज उसने एक तस्वीर खिंचवाई... उसके बटुए में एक तस्वीर थी; बच्चों की नहीं, बल्कि उसकी और उस खोंडे की। तस्वीर में वह छोटा लड़का उस खोंडे के सामने खोंडे जैसा लग रहा था। असल में, उसकी बेटियाँ बहुत गुणवान थीं। वे स्कूल में खूब पढ़ाई कर रही थीं। लेकिन उसे इस बात का पक्का यकीन था कि उसका अपना कोई पुत्र नहीं है... और वह तो मेरा है!

एक बार उन्होंने मुझे फोन पर बात करते हुए सुना। हम किसी वजह से कोल्हापुर जाने की बात कर रहे थे। तभी उन्होंने तुरंत कहा, "चलिए साहब, चलिए।"

मैंने सोचा, उसकी सबसे बड़ी बेटी अब बड़ी हो गई होगी, वह गहने खरीदना चाहेगी; लेकिन किस तरह के गहने और किस तरह की चीजें! वह कोल्हापुर जाना चाहता था क्योंकि वहां सबसे अच्छे बैलगाड़ियां मिलती हैं।

अगर आप इस नज़रिए से देखें, तो उसके यीशु ने उसे कुछ भी कम नहीं दिया। वह इकलौता था। घर एक खेत था। उसके माता-पिता ने उसे बनाया था। ऐसा लगता था जैसे वह इसी तरह जीने के लिए पैदा हुआ हो। वह दिन को टालता रहता था। कल के लिए कोई योजना नहीं थी। न पैसे के लिए, न बच्चों के लिए, न किसी और चीज़ के लिए। कल जब क्रिसमस आएगा, तो उसे आज आटा और नमक ढूंढना होगा। लगातार कर्ज में डूबा रहता था। मुझसे, कर्मचारियों से, मरीजों से, मेरे दोस्तों से, वह लगातार पैसे लेता रहता था। जब वह मुझसे पैसे मांगता था, तो ऐसा लगता था जैसे मैं उसे वह पैसा नहीं दे रही हूँ जिसका वह हकदार है। अलग-अलग बैंकों और क्रेडिट

यूनियनों के लोग मेरे दरवाजे पर आते रहते थे, उसका पीछा करते रहते थे। उसका पैसा काटकर हमें दे दो, यही उनकी मांग थी। वह हर जगह मेरा नाम लेता था। मैंने उससे न पूछा और न ही उसे बताया। जब कोई दरवाजे पर पैसे मांगने आता था तो उसे शर्म या झिझक महसूस नहीं होती थी। लोग बिना कुछ कहे उसे पैसे दे देते थे। इतने कर्ज में डूबे इस आदमी ने एक दिन एक कार खरीदी। सेकंड हैंड। उसने यह आमदनी बड़ी चालाकी से कमाई थी।

उनकी भाषा बाइबल जैसी होती जा रही थी और दिन-ब-दिन और भी ज्यादा ईसाई होती जा रही थी। रविवार उनका छुट्टी का दिन बन गया था। बाकी कर्मचारी बारी-बारी से रविवार को ड्यूटी करते थे। लेकिन वे कभी यह नहीं कहते थे, 'रविवार मेरा उपासना का दिन है'। सूली पर लटके यीशु पहले सिर्फ उनके कमरे की एक कील पर टंगे थे। अब वे अस्पताल की हर कील पर टंगे नजर आते थे। वे प्रार्थना करने की जहमत तक नहीं उठाते थे। वे अपने मुंह में मंत्र जपते रहते थे, अपनी जेब में माला रखते थे। उनके शब्दों में, वे माला जपते थे। जब भी उनके हाथ काम नहीं करते थे, वे माला को खींचते रहते थे। इतना ही नहीं, वे जब भी किसी से बात करते, खुद को आशीर्वाद देते रहते थे। वे बड़बड़ाते या अस्पष्ट नहीं बोलते थे, वे बहुत गहरी आवाज में बोलते रहते थे। वे कहते रहते थे, 'ईश्वर आपको आशीर्वाद दें', 'ईश्वर आपको आशीर्वाद दें'; ईश्वर यह और वह करें! वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो ईश्वर उनके आदेश का पालन करते हों। अगर स्वयं ईश्वर भी उनके सामने खड़े होते, तो वे उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहते, "ईश्वर आपको आशीर्वाद दें!"

जब बच्चे को इंजेक्शन लगाया जाता है, तो वह उसे रगड़ता है और कहता है, "भगवान तुरंत दर्द कम कर देंगे। देखो माँ, तुम्हारा बच्चा पल भर में ठीक हो जाएगा। वह पहले की तरह मुस्कुराने लगेगा।"

एक बार एक नवजात शिशु को आईसीयू में भर्ती कराया गया। मैं और मेरा दोस्त जूझ रहे थे... उसे सलाइन पिला रहे थे, बर्फ पर लिटा रहे थे, तरह-तरह के इंजेक्शन लगा रहे थे, तरह-तरह की मशीनें लगा रहे थे, तरह-तरह के टेस्ट कर रहे थे, रिपोर्ट का इंतज़ार कर रहे थे, रिपोर्ट आते ही खुराक बदल रहे थे। शिशु की हृदय गति घट रही थी और हमारी बढ़ती जा रही थी। हम दोनों जीवन के लिए अथक संघर्ष कर रहे थे। बाहर रिश्तेदारों की भीड़ बढ़ती जा रही थी और यह आदमी... पहले तो उसने मदद की, फिर अचानक गायब हो गया। आजकल यही उसकी आदत बन गई थी। सही समय पर गायब हो जाता था। बड़े होने पर हर कोई ऐसा ही व्यवहार करता है। हमने उसे दोबारा बुलाने की ज़हमत भी नहीं उठाई। हम अपना काम करते रहे और उसे चिढ़ाते रहे।

बच्चा बच गया। मैंने और मेरे दोस्तों ने बड़ी समझदारी से उसकी हालत स्थिर की। हम उसे बताने के लिए बाहर आए कि वह क्या कर रहा था - चक्रधर रिश्तेदारों के एक समूह के सामने एक पेड़ के नीचे बैठा था और ईश्वर से दया की प्रार्थना कर रहा था। घुटनों के बल बैठकर, आँखें बंद करके, पूर्ण श्रद्धा और गहरी आवाज़ में उसने कहना शुरू किया, “हे प्रभु, आपकी दया आकाश से भी ऊँची है। आपका सत्य बादलों तक पहुँचता है।”

धीरे-धीरे वह गाने लगा, “मन को प्रभु पर स्थिर रखना, प्रभु को प्रसन्न करने वाले कार्य करना, अपने स्वार्थों को भूल जाना, केवल अपने स्वार्थों पर विचार करना, यही प्रभु की सच्ची सेवा है,

यही लोगों की सेवा है, हे ईश्वर, इसे स्वीकार किया जाए।"

जैसे ही यह खुशखबरी आई कि बच्चा अब स्वस्थ है, रिश्तेदार खुशी से झूम उठे; लेकिन चक्रधर के रिश्तेदार नहीं। पहले तो मैं चौंक गया। लेकिन फिर मुझे एहसास हुआ कि उन्होंने अचानक असहाय, निराश और लाचार रिश्तेदारों को सहारा दिया है। दरअसल, यही तो हम डॉक्टरों का भी काम है; लेकिन हमारे पास इसके लिए समय कहाँ था? सिर पर हाथ रखकर चिंता करने के बजाय, उन्होंने भजन गाकर रिश्तेदारों को बच्चे के इलाज में शामिल होने का एहसास दिलाया। उन्होंने बच्चे की माँ, जो बहुत रो रही थी, पिता, जो नशे में धुत होकर आया था, और गंभीर रूप से बीमार बच्चे के पंद्रह-बीस बेचैन रिश्तेदारों को प्रार्थना में लीन कर दिया।

धीरे-धीरे यह सिलसिला बढ़ता गया। हर रविवार को उनकी सभा में लोगों की भीड़ उमड़ने लगी। कुछ ही दिनों में पूरा गाँव चहल-पहल से भर गया। पता नहीं क्यों, लेकिन लोग उनसे खुलकर बातें करने लगे। वे बेबाकी से बातें करते। फिर वे समस्याओं के समाधान सुझाते, लोगों के जटिल कामों को सुलझाने में मदद करते। मुजावर, जो सरकारी अस्पताल में पोस्टमार्टम करते थे, मेरे खास परिचित थे। उनके अन्य परिचित भी बहुत अच्छे थे। चाहे किसी सरकारी दफ्तर से कोई दस्तावेज़ लेना हो या किसी अनजान गाँव में अचानक किसी को पैसों की ज़रूरत पड़ जाए, वे हर चीज़ का इंतज़ाम कर देते थे।

एक बार गर्मियों में राज्यपाल महाबलेश्वर आए और उनसे सीधे मिले! उनकी पत्नी के एक दूर के भाई का महाबलेश्वर के राजभवन में रसोईघर है। उस भाई की पत्नी और राज्यपाल की पत्नी गाँव गईं। तो क्या हुआ! उन्होंने वहाँ यीशु की एक तस्वीर बनाई थी। अब जब उन्होंने कहा कि वे पत्नी के गाँव वाले पति के भाई हैं, तो राज्यपाल उनसे भी मिले और उन्होंने वह तस्वीर भी रख ली। क्यों, वे भी सीरियाई ईसाई थे और उनकी पत्नी भी सीरियाई ईसाई थीं! तो यह यीशु की इच्छा है!

एक साल उन्होंने मुझे क्रिसमस की पूर्व संध्या पर आमंत्रित किया। उनके आमंत्रण के तरीके से ही मैं समझ गया था कि निमंत्रण सच्चा नहीं था; फिर भी मैं पूरे मन से गया। उस दिन मुझे पता चला कि जिस गाँव में वे रहते थे, वहाँ एक गिरजाघर था। कुल मिलाकर, उस गिरजाघर में एक नई ऊर्जा के संकेत स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे थे। वहाँ एक लंबी प्रार्थना हुई। भीड़ बहुत थी। मैं आश्चर्यचकित रह गया। दान पेटी भी घुमाई गई। जब मैंने अपनी जेब में हाथ डाला, तो बटुआ नहीं था! मैं बिना बटुआ लिए ही बाहर आ गया। तो उन्होंने मुझे दान पेटी नहीं दी। उन्हें मेरी पहचान का तो कोई सवाल ही नहीं था; फिर भी उन्होंने मेरे पास पहुँचने से पहले ही दान पेटी वापस कर दी। क्यों? क्या उन्हें मेरे पैसे नहीं चाहिए थे? उनका मन चिंतित नहीं था, लेकिन कुछ तो चल रहा था। पिछले दो सालों से उनके मन में कुछ हलचल हो रही थी।

मेरे प्रति उसका प्यार और स्नेह अब घृणा और नफरत में बदल गया था। यह बहुत अजीब स्थिति थी। क्या यह अजीब नहीं है कि एक बच्चा, जिसे बचपन से ही प्यार और शिक्षा मिली, अचानक आपसे मुंह मोड़ ले, अचानक ऐसा व्यवहार करने लगे? अगर आपका अपना बच्चा ऐसा व्यवहार करे, तो आप उसे डांट सकते हैं और पूछ सकते हैं, यह अजनबी कौन है? लेकिन उसका व्यवहार दिन-ब-दिन बदलता और बिगड़ता जा रहा था। वह काम के बारे में कुछ नहीं कहना चाहता था,

कुछ भी नहीं बोलना चाहता था; कोई भी कर्मचारी उसके खिलाफ कुछ नहीं कहना चाहता था, हर कोई उसे दबाना चाहता था, यही उसकी ताकत थी। कैसी ताकत, कैसी ताकत! मुझे उस पर गुस्सा आ रहा था। लेकिन जब उसे गुस्सा आता, तो वह मीठे जवाब देने लगता। वह दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसा रहा था। केवल वही जानता था कि उसमें क्या कमी है, उसमें क्या खामी है! लेकिन वह निश्चित रूप से असंतुष्ट और बेचैन था। भगवान को प्रसन्न करने की उसकी इच्छा बहुत बढ़ गई थी। वह किसी और चीज के बारे में सोच ही नहीं सकता था, किसी और चीज को देख ही नहीं सकता था।

उसे पता था कि दसवीं कक्षा पास कर लेने पर उसे किसी गिरजाघर में नौकरी मिल जाएगी। फिर उसने यही सोच अपना ली। किसी तरह उसने नौवीं कक्षा पास कर ली। उसने दसवीं कक्षा के बाहर बैठने का निश्चय किया और फिर जब तक किताब खत्म नहीं कर ली, तब तक उसे हाथ में पकड़े नहीं छोड़ा। उसकी पढ़ाई का तरीका था सारी किताबें रट लेना। मराठी, अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल; इतना ही नहीं, उसने गणित भी रट लिया था। तो क्या हुआ, उसने आसानी से दसवीं कक्षा पास कर ली। वह पास हो गया और एक दिन, सिर्फ एक वाक्य कहकर, 'मैं कल से काम पर नहीं आऊंगा!', वह चला गया। मुझे थोड़ा अजीब लगा, लेकिन सिर्फ एक पल के लिए; और फिर मुझे पूरी तरह से आजादी महसूस हुई। वह मेरी गर्दन पर ऐसे बैठा था जैसे कोई बूढ़ा सिंदबाद की गर्दन पर बैठा हो। वह मुझे छोड़ने को तैयार नहीं था।

उसके जाने को दस-बारह साल हो गए होंगे। एक दिन मैंने बड़ी आसानी से टीवी चालू किया; और वहाँ वह एक धार्मिक चैनल पर था - चक्रधर! उसका पहनावा एकदम सटीक था... सूट, बूट, टाई। अब वह एक बड़ा ईसाई बन चुका था। वह कह रहा था कि यीशु की कृपा से उसने दसवीं, बारहवीं कक्षा उत्तीर्ण की और बाद में एक चर्च कॉलेज से धर्मशास्त्र में एम.ए. और पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। वह अपनी डॉक्टरेट तक की सफलता की कहानी सुना रहा था। वह कह रहा था कि ईश्वर ने उसे कृपा दी है, और इसीलिए उसे दुखों से मुक्ति पाने की शक्ति प्राप्त हुई है।

मैं आँखें फाड़कर देखता रहा। अब मुख्य कार्यक्रम शुरू हुआ - बीमारों का इलाज। अलग-अलग बीमार लोगों को मंच पर लाया जा रहा था। वह जोर-जोर से मंत्रोच्चार करते हुए इशारे कर रहे थे। वह रोगियों के हाथों, पैरों, छाती और पेट पर हाथ फेर रहे थे। वह उनकी जाँच कर रहे थे। वह आँखें बंद करके उनके शरीर को देख रहे थे। वह प्रार्थना की मुद्रा में हाथ हिलाकर उनका इलाज कर रहे थे। वह उन्हें बता रहे थे कि वे अपनी बीमारियों से ठीक हो गए हैं। उन्होंने तुरंत यह भी घोषणा की कि उन्हें ठीक होने का अहसास हुआ है। तुरंत ही भीड़ जयकारे लगाने लगी। चक्रधर लगातार ऊँची आवाज़ में बोल रहे थे। उन्होंने यह सब याद कर लिया होगा। वह माइक में चिल्लाते हुए जोर-जोर से इशारे कर रहे थे। पूरे जोश और उत्साह के साथ। वह गरज रहे थे। कैमरा अब भीड़ के बीच में चला गया। भीड़ खचाखच भरी थी। हर कोई बड़े उत्साह से उनकी बातें सुन रहा था। वह अपनी प्रशंसा में नारे लगा रहे थे। भक्त उनके नारों में मग्न थे। वे लोग उसके इशारों पर हाथ हिलाकर क्या कर रहे थे, वे बेमतलब नाच क्यों रहे थे, वे भयानक चीख-पुकार क्यों कर रहे थे, वे बेमतलब गाना क्यों गा रहे थे! ऐसा लग रहा था मानो सबका एक ही

मन और एक ही शरीर हो और उनका दिमाग - डॉ. चक्रधर ही हो!

ते मूल

• वह

उसके लिए सब कुछ ठीक चल रहा था। पहले तीन बच्चे लड़कियाँ थीं। यह चौथा बैच था। इसलिए वह पेट दर्द के साथ घर से निकली। वह अस्पताल गई और फिर वही हुआ। आखिरी प्रसव पीड़ा के साथ, एक नन्हा सा काला बच्चा पैदा हुआ। वह आते ही ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। इतना ज़ोर से कि अनुभवी नर्स तुरंत समझ गई कि उसे अलग से रोने की ज़रूरत नहीं है। जब वह बच्चे की नाल काट रही थी और कैंची नीचे रख रही थी, तो उसने पूछा, "क्या हुआ?" नर्स ने बच्चे की नाल उठाई और झुककर देखा। उसने देखा कि लिंग, जो मर्दानगी का प्रतीक है, लटक रहा है। "यह एक लड़का है!"

उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। वह प्रसव पीड़ा को भी भूल चुकी थी। चूंकि यह उसका चौथा प्रसव था, इसलिए प्रसव पीड़ा उसके लिए कोई खास नहीं थी; लेकिन ऐसा लग रहा था मानो उसे दुनिया के सारे कष्टों का इलाज मिल गया हो!

वह पति जो लगातार बकवास करता रहता था, वह ननद और बहू जो उसे ताने मारती रहती थीं, वह पड़ोसी जो बार-बार कहती थी, 'अग्गबाई! चौथी बार?' और वह सास जो गुप्तचरों की सरगना थी, इन सबके हथियार अब कुंद और जंग खा चुके थे। पुत्र प्राप्ति के हथियार को पराजित करके, अब वह दुनिया की रानी बनने जा रही थी।

जीवन किसी संपत्ति के बारे में नहीं है। एक गरीब आदमी का पति जो राजमिस्त्री बन गया। उसकी आमदनी क्या थी! उसमें कितने लोगों का पेट भरना था! उसका अपना जीवन बर्तनों और चिथड़ों से भरा था। लेकिन चाहे कुछ भी हो, यही उसके लिए पूरी दुनिया थी। भले ही बच्चे का सिर सुंदर था, गौरैया को अपने घोंसले पर गर्व था। सारा दर्द थमने के बाद, वह आधी नींद में सो गई और उसे बेटे की प्राप्ति के लिए किए गए सभी उपवास, प्रार्थनाएँ और विनतियाँ याद आ गईं। हर बार, इतना सब करने के बाद भी, उसे निराशा ही हाथ लगती। दाई कहती, "लड़की है!" और फिर सास उस पर तरस खाकर चली जाती। उसका पति उसे गले लगाता। यह सोचकर कि वह अपने पिछले जन्म के पापों का प्रायश्चित कर रही है, वह भी उठकर तुरंत काम पर लग जाती। वह अपने पीछे आने वाली उन लड़कियों की भी दिल से देखभाल करती, जिन्हें उसके दिल में कोई जगह नहीं देती थी। सबसे छोटी से लेकर सबसे बड़ी तक, वे सभी पूरे परिवार के गुस्से का शिकार थीं, लेकिन वे शिकार नहीं बनीं! इतनी गरीबी के बावजूद, वे सब जीवित रहे, वे कमजोर थे, लेकिन जीवित रहे। यही तो महिलाओं का स्वभाव है! उनकी माँ ने बेटे की उम्मीद और इस जीवन भर दृढ़ता से इस आशा को थामे रखा।

अचानक वह चौंक गई। उसे लगा जैसे बहन ने उसकी गोद में एक सुंदर बच्ची को बिठा दिया हो। वह एकदम से जाग उठी। उसने देखा कि बहन उसे चाय और बिस्कुट खाने के लिए जगा रही है। बिस्कुट साधारण नहीं थे, वे 'किरिम' के थे। उसके पति ने बड़े बच्चे के 'हैप्पी बडी' के लिए एक हलवा लाया था। उसने उस समय एक खाया था। उसे तब वह बहुत पसंद आया था। काश, उसके पति को वही हलवा लाना याद रहता! बेटे के होने के सुख की शुरुआत हो चुकी थी! (या

सुखों की शुरुआत?)

तो

जैसे ही पुर्तगाली नर्स ने बाहर आकर उन्हें बताया कि उन्हें बेटा हुआ है, उनके चेहरे का भाव और कांपता शरीर साफ दिखाई देने लगा। नर्स ने देखा कि उनका सीना गर्व से फूल गया है और उन्होंने अपनी मुस्कान रोकने की नाकाम कोशिश की। उन्हें लगा कि नर्स का खुश चेहरा बेटे के जन्म की खुशी का जश्न मना रहा है। बेटे के जन्म की खुशी में वे जड़ी-बूटियां और दवाइयां लाने के लिए मुड़े। मुड़े तो सही, लेकिन अंदर से कुछ गड़बड़ महसूस हुई और वहीं रुक गए। बंद दरवाजे के पीछे से वरिष्ठ नर्स की चीख सुनाई दी। वह पुर्तगाली नर्स पर चिल्ला रही थीं जो उन्हें बेटे के जन्म की खबर देने आई थी - "क्या बात थी, इतनी जल्दी बाहर जाकर उसे बता दिया कि तुम्हें बेटा हुआ है? क्या वह आदमी तुम्हारा गला काट देगा? जाओ, उसे अभी पैडबिड दो। मैं तुम्हें सर कह रही हूँ।"

बेचारी बूढ़ी नर्स! उसने उसे पहला चुंबन देने का फैसला किया और अस्पताल से चला गया।

वह इस एक घटना का कितना बेसब्री से इंतज़ार कर रहा था! घर में हर कोई लड़का चाहता था। यहाँ तक कि वह भी। सोनोग्राफी से पता लगाना आसान था। लेकिन अब, कानून के चलते, डॉक्टर यह नहीं बता सकते कि लड़का है या लड़की। अगर वे नहीं बता पाते, तो ठग पहले 500 लेते थे, फिर 5000 मांगने लगे। लेकिन आज के ज़माने में, क्या हम तब तक लड़कियों को बच्चे पैदा करने दे सकते हैं जब तक कि हमें लड़का न हो जाए? लेकिन हर बार जब वह, उसकी पत्नी और पूरा परिवार एक लड़के की उम्मीद में इंतज़ार कर रहे थे, तो उन्होंने रोटी खाई। जो भी पूछता, "क्या लड़का है?"

लेकिन इस बार सारे संकेत एक साथ मिल गए। उनके सुपरवाइजर ने कुंडली पढ़कर सोने का समय और दिशा तय कर दी थी। इसके अलावा, गुरुवार को छाछ न पीने, शुक्रवार को उपवास रखने, ताबीज और तीन रुद्राक्ष धारण करने जैसी तैयारियां भी थीं। फिर जेजुरी जाने का समय आया, और जब उन्हें वहां फैसला मिला, तो वह पक्का हो गया। यह बूढ़ा आदमी, जो हमेशा इंजेक्शन और प्रसव के लिए गांव की नर्स को बुलाता था और घर पर ही सब कुछ करता था, सीधे अस्पताल गया और अपनी पत्नी का नाम लिखवाया। वह नारियल पर एक हजार या बारह सौ रुपये और चावल पर ढेर सारा पैसा खर्च कर सकता था; लेकिन इस बार, भगवान का फैसला और उसका मन एक ही था। अंततः, उसकी दिली इच्छा पूरी हो गई।

वह दवाइयों से भरा थैला और गोलियों की बोतल लिए प्रसूति वार्ड का दरवाजा खुलने का इंतजार करते हुए बाहर खड़ा था। दरवाजा शोर-शराबे के साथ खुला और नर्स एक शरारती मुस्कान के साथ बाहर आई। यह देखकर वह चौंक गया; बल्कि थोड़ा सा चौंक गया। लेकिन फिर बिना कुछ कहे, वह दवाइयाँ अंदर ले गई। उसकी उदासीनता उसे अशुभ लगी। बरामदे में लगे पीले बल्ब की तेज रोशनी में, उसकी अपनी परछाई सीढ़ियों पर पड़ी। यह भी उसे अशुभ लगा। अत्यधिक खुशी के क्षण में, उसका दिल डर से भर गया। उसके सामने लगे बोर्ड पर लाल रंग की चींटियों से बने अक्षर एक के बाद एक दौड़ रहे थे। उनकी टिमटिमाहट और धुंधलाहट से स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न संदेश निकल रहे थे। बोर्ड पर लिखा था: 'यहाँ लिंग निर्धारण परीक्षण नहीं किए

जाते'... 'लड़के और लड़कियाँ एक समान हैं'... और वह खुद को हँसते हुए पाया।

सीनियर डॉक्टर

जब वरिष्ठ डॉक्टर शोरगुल के बीच प्रसव कक्ष में पहुँचे, तो माहौल गंभीर था। नर्सें और कुछ कनिष्ठ डॉक्टर बच्चे के चारों ओर घेरा बनाकर खड़े थे। बच्चा खुशी से अपने पैर हिला रहा था; लेकिन किसी को नहीं पता था कि आगे क्या करना है। डॉक्टर के आते ही सभी ने शिष्टाचारवश एक तरफ हट गए। दस्ताने पहनकर डॉक्टर ने बच्चे की जाँच शुरू की। पैर खोलकर डॉक्टर ने जननांगों की जाँच की। यह अजीब था। बच्चा न तो लड़की था और न ही लड़का।

वरिष्ठ डॉक्टर ने पूछा, "जननांगों की अस्पष्टता पर किसने ध्यान दिया?" (किसने ध्यान दिया कि लिंगभेद संभव नहीं है?)

एक युवा छात्र आगे आया।

“आपने मरीज और उसके रिश्तेदारों को क्या बताया है?” वरिष्ठ डॉक्टर

"सर, मुझे छोटी बहन ने बताया था कि लड़का होगा..." बड़ी बहन फुसफुसाते हुए बोलने लगी।

सर ने क्रोध, अस्वीकृति, तिरस्कार और न जाने क्या-क्या भाव व्यक्त करते हुए व्यंग्यात्मक दृष्टि डाली और यह सोचकर कि नर्सें वहाँ नहीं हैं, जूनियर डॉक्टर से बात करने लगे। बोलते-बोलते ही सर के हाथ बच्चे की जाँच भी कर रहे थे। मानो कोई कुशल जासूस अपने हाथ में पकड़े चार-दो धागों से ही अपराधी को पकड़ लेता हो। किसी चीज के ऐसे दिखने का मतलब यह नहीं कि उसमें कोई दोष है, किसी चीज के ऐसे दिखने का मतलब यह नहीं कि वह कोई बीमारी है। कुछ ही मिनटों में उन्होंने संभावित निदान के रूप में 'सत्रह हाइड्रॉक्सिलेज की कमी' बता दी। तब तक छात्र डॉक्टरों के सामने 'आगे क्या?' का प्रश्न मंडरा रहा था; लेकिन सर ने सही निदान तक पहुँचते हुए, चरण दर चरण आगे की जाँचों, उनके संभावित निष्कर्षों और तदनुसार तय की जाने वाली भविष्य की दिशा का खाका प्रस्तुत किया। सर का बौद्धिक अभ्यास आकर्षक था। यह देखकर सभी खुश और निश्चिंत हो गए। इसी अवसर का लाभ उठाते हुए सिस्टर ने फिर से बोलना शुरू किया, "सर, अब..."

“मुझसे बात मत करो! अपनी नौकरानियों को मेरे पास भेजो!” सर ने सख्ती से कहा। सिस्टर का चेहरा उतर गया।

“बहन, यह एक सामाजिक आपातकाल है और तुमने इसे पूरी तरह बिगाड़ दिया है।” ‘सामाजिक आपातकाल’ शब्द बिल्कुल सही था। जब प्रसव की घोषणा होती, तो स्वाभाविक रूप से यह सवाल उठता, “लड़का या लड़की?” यह महिला क्या जवाब देने वाली थी... अपने पति को...?

उसे निर्देश देने के बाद डॉक्टर चला गया और प्रशिक्षु डॉक्टर पागलों की तरह बच्चे पर टूट पड़ा। उसकी तस्वीरें ली गईं। पाठ्यपुस्तकों और संदर्भ पुस्तकों की तुरंत समीक्षा की गई। इंटरनेट से सब कुछ डाउनलोड किया गया। विभिन्न परीक्षणों के लिए रक्त और मूत्र के नमूने लिए गए। बोतलों पर लेबल लगाने, फॉर्म भरने, प्रयोगशाला को सूचित करने और अस्पताल में संभव न होने वाले परीक्षणों के लिए बड़ी प्रयोगशालाओं से संपर्क करने के लिए फोन करने में समय कितनी जल्दी बीत गया! अंत में, जब उन परीक्षणों के लिए अग्रिम भुगतान करने का समय आया जो (डॉक्टरों की टीम के अनुसार) आवश्यक थे, तो महिला के पति को बुलाया गया।

तो
सूजी हुई आँखों के साथ वह कहीं खोया हुआ सा पहुँचा। उसे आभास हो गया था कि कुछ बहुत गलत हुआ है। वह बेमन से कुर्सी पर बैठ गया। जूनियर डॉक्टर ने बच्चे की बीमारी का गुलाबी सारांश, जाँचों की सूची, उनकी आवश्यकता और लागत उसके सामने रख दी। उसने उसे बच्चे का आंशिक लिंग बड़े करीने से दिखाया। उसने एक फॉर्म पर हस्ताक्षर किए जिस पर लिखा था, 'मैंने बीमारी के बारे में जानकारी दे दी है'। आगे की जाँचें तभी की जाएँगी जब वह भुगतान करेगा। लागत बहुत अधिक थी, राजमिस्त्री की पहुँच से बाहर। काँपती हुई आवाज़ में उसने पूछा, "क्या पैसे देने पर लिंग ठीक हो जाएगा?"
“नहीं। गलती बहुत बड़ी है... लेकिन हमें असली वजह पता चल जाएगी।” अगर जांच की जाती, तो असली वजह पता चल जाती। इससे बहुत कुछ सीखने को मिलता। ऐसे मामले लाखों में एक होते हैं। डॉक्टर की बौद्धिक और अकादमिक रुचि सही निदान पाने में लगी हुई थी। “तो, आप भुगतान करेंगे या नहीं?” डॉक्टर ने अधीरता से पूछा।
जब उसे बताया गया कि लिंग खड़ा नहीं होगा, तो घटना में उसकी बची-खुची दिलचस्पी भी खत्म हो गई। डॉक्टर ने उसे समझाया और समझाया, लेकिन वह चुप रहा। उसने कुछ नहीं कहा। वह कैसे बोल सकता था? इतनी बड़ी खबर पर चुप्पी कैसे कायम रह सकती थी? लड़के का व्यंग्य और उस व्यंग्य पर हुई मजेदार चर्चा पूरे अस्पताल में आग की तरह फैल गई। वह सीढ़ियों पर सन्न बैठा रहा, जबकि आने-जाने वालों की निगाहें मीडिया कैमरों की तरह उस पर टिकी हुई थीं। ऐसा लग रहा था मानो उसकी भावनाएं लाइव प्रसारित हो रही हों। धीरे-धीरे उसके आसपास भीड़ बढ़ने लगी और फिर उसे कुछ महसूस होने लगा। वह एक बेटा चाहता था, इसलिए उसने हंगामा किया और एक लकड़बग्घे की तरह व्यवहार करने लगा! जन्मजात लकड़बग्घा! उसे कंपकंपी महसूस हुई। पहले लड़के की, फिर अपनी पत्नी की और फिर खुद की। उसने महसूस किया कि उसका पूरा शरीर पसीने से भीग गया है और खुद को उल्टी करने के लिए मजबूर करते हुए वह बाथरूम की ओर भागा।
खूब उल्टी करने के बाद उसे थोड़ा बेहतर महसूस हुआ। चेहरा धोने के बाद जब उसे बहुत पसीना आ रहा था, तभी दूर से कहीं से उसका नाम पुकारा गया और वह बाहर आया। उसे प्रसव कक्ष में बुलाया गया था। बाहर लोगों की भीड़ लगी हुई थी। मानो किसी की मृत्यु के बाद लोग इकट्ठा होते हैं। वे इस धरती पर जन्म लेने वाले लिंगहीन शिशु को देखना चाहते थे। अलग-अलग विभागों की नर्सें सफेद वस्त्र पहने वहाँ खड़ी थीं। प्रसूति वार्ड में बैठे बुजुर्ग लोग अजीब निगाहों से एक-दूसरे को यह अद्भुत कहानी सुना रहे थे। उसके चेहरे पर लिपटा कपड़ा और गर्दन की झुकी हुई निगाहें मानो उसका पीछा कर रही हों, मानो वह भागने की कोशिश कर रहा हो।
“मेरी पत्नी ने 2.8 किलो के एक स्वस्थ बच्चे को जन्म दिया, जिसकी पहचान लड़के या लड़की के रूप में नहीं हो सकी।” बहन ने फटे हुए स्वर में टिशू पेपर पर लिखे इस संदेश को पढ़ा और उससे हस्ताक्षर करने को कहा। उसने कांपते हाथों से हस्ताक्षर किए।
“अरे... इधर देखो... ये तुम्हारा बच्चा है।” उसने अपना सिर घुमाया। नर्स बच्चे के हाथों को कसकर पकड़े हुए बोलती रही। “ये लिंग लड़के का लग रहा है। लेकिन लिंग के नीचे देखो। वहाँ

योनि जैसी कोई चीज़ है। वहाँ पुरुष अंडकोष की थैली होनी चाहिए। इसलिए तुम ये नहीं बता सकते कि ये लड़का है या लड़की, समझे?"

गहरी आवाज़ में यह लिंगनामा सुनकर वह भावविभोर हो गया। क्या ऐसे बच्चे को जन्म देना अपराध था, या यह किसी पिछले पाप के दंड के रूप में पैदा हुआ था? उसका सिर चकराने लगा। उसे ऐसा लगा मानो दुनिया के सारे भिखारी नग्न घूम रहे हों, उनके लिंग इतने बड़े हो गए हों कि वे हमें अपने लिंग दिखा रहे हों, अपनी कामुकता का खुलकर प्रदर्शन कर रहे हों।

फिर एक बेहद विचित्र और दिल दहला देने वाली घटना घटी। नर्स ने बच्चे को दुपट्टे में लपेटा और उसे उसके सामने रखकर उसे देने लगी। बैंगनी बालों वाला लड़का "हे, हे, हे" चिल्लाते हुए रो रहा था और उसकी दोनों बाहें मानो उसके शरीर से चिपकी हुई थीं। वह बच्चे का क्या करता? क्या बाहर मौजूद भीड़ उसे घेर लेगी? क्या कोई उसे "देखो, हे!" कहकर ताना मारेगा? उसे उस बच्चे को छूने का एक गहरा डर महसूस हुआ, और अचानक वह डर सिकुड़कर एक कंपकंपी की तरह तीव्र हो गया।

"अरे, बिना देखभाल किए बच्चे को रिश्तेदारों को कैसे दे सकती हो?" हेड नर्स ने नर्स पर झल्लाते हुए कहा। नर्स ने धीरे से कहा, "हाँ, हाँ," और बच्चे को देखभाल के लिए अंदर ले गई, लेकिन बच्चा गायब हो गया।

वह डॉक्टर

"बच्चे का लिंग पाँच कारकों द्वारा निर्धारित होता है..." अंतिम कमरे में डॉक्टरों की चर्चा बहुत ही सजीव थी। 'गुणसूत्र के आधार पर लिंग का निर्धारण X और Y गुणसूत्रों द्वारा होता है; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि अंडकोष बनेंगे ही। गुणसूत्र XY हो सकते हैं, जिसका अर्थ है पुरुष, लेकिन अंडकोष महिला के हो सकते हैं। इसलिए, अंडकोष के आधार पर लिंग का निर्धारण होता है... लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि अंडकोष के लिंग के अनुरूप जननांग भी बनेंगे। ऐसा भी हो सकता है कि पुरुष के अंडकोष हों, लेकिन बाहरी जननांग महिला के हों। इसलिए, लिंग का निर्धारण बाहरी इंद्रियों के आधार पर भी होता है। इसके अलावा, मनोवैज्ञानिक लिंग भिन्न हो सकता है और यह इस बात पर भी बहुत निर्भर करता है कि बच्चे का पालन-पोषण घर और समाज में लड़के या लड़की के रूप में होता है या नहीं...' आश्चर्यजनक जानकारी दी और ली जा रही थी। 'यह बच्चा वास्तव में लड़की थी; लेकिन विकास के एक निश्चित चरण में, ट्वेंटी-वन हाइड्रोलाइज़ नामक रसायन की कमी हो गई। इसके कारण, पुरुष लिंग बढ़ गया। संतुलन बिगड़ गया।' परिणामस्वरूप, जिस लड़की के अंडकोष महिलाओं जैसे थे, उसे पुरुषों के बाहरी जननांग प्राप्त हुए। वह भी आंशिक रूप से...

सब कुछ स्पष्ट हो जाने के बाद चर्चा आगे बढ़ी। असंतुलन के अन्य दुष्प्रभाव भी दिखाई देने लगे। बच्चे का रंग बहुत गहरा था। गुर्दे और रक्तचाप पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहे थे। यदि समय पर उपचार न किया जाता, तो बच्चा मर जाता। और सटीक निदान के बिना उपचार कैसे किया जा सकता था? सटीक निदान के लिए परीक्षण आवश्यक हैं। इसके लिए धन की आवश्यकता है। पिता को अग्रिम राशि देनी चाहिए थी; लेकिन पिता के पास धन नहीं था। और जो कुछ भी उनके पास था, वह इस नपुंसक बच्चे के लिए नहीं था!

वह

"उस मरीज को वार्ड में ले जाओ," नर्स ने आदेश दिया।

"लेकिन बहन, उसने अभी तक बच्चे को दूध नहीं पिलाया है।"

"क्या? अरे, उसे पेशाब कराओ।"

"बहन, मैंने उसे बहुत कुछ कहा; लेकिन वह सुनती ही नहीं। उसने बच्चे को छुआ तक नहीं। उसने बच्चे को अपनी गोद में रखा, फिर उठी और बगल वाले कमरे में प्रसव मेज पर सो गई।"

"अरे औरत, तुमने उसे अपने बगल वाली मेज पर कैसे सोने दिया? अब तो प्रसव की चादरें पूरी तरह से खराब हो गई होंगी!"

“मैंने तुम्हें पैड दिया था, बहन।”

"क्या हुआ! दो मरीज़ भर्ती हो रहे हैं। तुम उसे उठाओ, व्हीलचेयर में बिठाओ और वार्ड में छोड़ दो।"

"क्या यह खिलाने के लिए है?"

"बच्चे को गोद में लेने से इनकार करने का कारण कागज पर लिख लीजिए। हम कोई झंझट नहीं चाहते। जब से हम यहां आए हैं, हम अकेले ही इस जिम्मेदारी को निभा रहे हैं!"

कुछ ही समय में, भूख से कराहते हुए बच्चे को बांस के डंडे से उसकी बाहों में उठा लिया गया, और दुल्हन व्हीलचेयर से वार्ड में उतर आई।

देखने वालों की भीड़ जमा हो गई। वह दीवार की ओर मुंह करके रो रही थी। धीरे-धीरे भीड़ छंटने लगी। सभी ने बच्ची का मुंह खोलकर और सिर घुमाकर उसके गुप्तांग को देखा और दुखी मन से चले गए। रोते-रोते, अंत में थककर और भूख से चूर होकर बच्ची सो गई, और रोते-रोते, अंत में थककर और भूख से चूर होकर उसकी माँ भी सो गई।

वह घर

घर में अफरा-तफरी मच गई। सास ने आग बबूला होकर कह दिया, “तुम्हें पानी कौन देगा?” जब उसने कहा कि वह जल्दी में घर से निकल गई है, तो सास अपनी बहू को इतनी जोर से कोसने लगी कि पूरे गांव को सुनाई दे गया। वह लगातार कोसती रही, इतनी जोर से कि सुनने वालों ने अपने कान बंद कर लिए। बहू का परिवार बच गया। लेकिन इससे भी उसका मन शांत नहीं हुआ। वह अंदर ही अंदर ज्वालामुखी की तरह धधकती रही, और जैसे ही लड़कियां घर में झाँककर देखने लगीं कि क्या हो रहा है, ऐसा लगा जैसे ज्वालामुखी फट गया हो। लावा, राख, पत्थर, धुआँ, सब कुछ उन भोली-भाली लड़कियों पर बरसने लगा। अपनी दादी का साक्षात रूप देखकर वे वहीं जम गईं। वे लावा से ढकी पत्थर की मूर्तियों जैसी हो गईं।

इस तरह का नजारा गांव के लिए नया नहीं था, लेकिन आज का खेल खास था। कारण भी खास था, यह बहुत मजेदार था। हर तरफ एक ही बात चल रही थी... छक्का... हिजड़ा... ताली... बृहन्नदा... शिखंडी... अर्धनारी नटेश्वर... लिंग... योनि... लवाड़ा... छेद।

वो लड़का

उसने बच्चे को दूध पिलाने से इनकार कर दिया, उसने बच्चे पर पाँच पैसे तक खर्च करने से इनकार कर दिया, और बच्चा मरने से इनकार कर रहा था। वह दीवार की ओर मुड़ गई और

अंधेरा छा गया। वह अंदर ही अंदर कमजोर होता चला गया, भगवान को दोष देता रहा। बच्चा भी धीरे-धीरे कमजोर होता चला गया। दो-तीन दिन इसी तरह बीत गए। किसी को समझ नहीं आ रहा था कि इस अजीब बच्चे की माँ का क्या किया जाए। लेकिन उसका मन पत्थर का हो चुका था। एकमात्र उपाय बच्चे को खत्म करना था। उसने फैसला किया कि वह उसे घर ले जाकर रात में केले के गड्ढे में दफना देगा। उसने डॉक्टर से डिस्चार्ज मांगा; लेकिन चतुर डॉक्टर तुरंत इस जल्दबाजी का कारण समझ गया। उसने सीधे पुलिस को सूचित किया कि यह समूह बच्चे के साथ कुछ अच्छा या बुरा कर सकता है। पुलिस का जवाब वही घिसा-पिटा था... 'जब तक कोई अपराध नहीं होता, हम कुछ नहीं कर सकते!'

दुर्भाग्यशाली माता-पिता का अभागा बेटा न तो जीवित रहा और न ही मरा। न तो उसके माता-पिता बच पाए और न ही वह स्वयं। माँ ने उसकी देखभाल नहीं की। पिता ने न तो दूध पाउडर लाया और न ही जाँच का खर्च उठाया। हर सुबह और शाम, उसके और डॉक्टर के बीच एक ही सवाल और जवाब होता था:

"डॉक्टर साहब, बच्चे का क्या होगा?"

"आप जांच का खर्च उठाएंगे। अगर आपकी पत्नी बच्चे को स्तनपान नहीं कराती है तो क्या होगा?"

"क्या पैसे देने से यह ठीक हो जाएगा? क्या उसका लिंग बढ़ जाएगा?"

"नहीं।"

"तो फिर मैं पैसों का क्या करूँ? आप उन्हें घर पर ही छोड़ दीजिए। हम घर जाकर दूध ले आते हैं।"

"मैं तुम्हें घर पर कैसे छोड़ सकती हूँ? बच्चा बीमार है।"

लेकिन आपका इलाज कहां हो रहा है?

“आप ये परीक्षण कहाँ करते हैं?”

आपने कहा था कि जांच करना बेकार है।

एक ऐसी ही चर्चा के दौरान, डॉक्टर ने गुस्से से कहा, "अगर आप बच्चे को खाना नहीं खिला सकते या उसकी देखभाल नहीं कर सकते, तो आप उसे किसी अनाथालय में क्यों नहीं दे देते?"

इन शब्दों के साथ ही माता-पिता के दिमाग में बिजली सी कौंध गई। मानो उन्हें मुक्ति का रास्ता मिल गया हो! "मैं इसे दे दूंगा!"

डॉक्टर आश्चर्यचकित थे, उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि उन्होंने पहले कभी इतने सरल समाधान के बारे में क्यों नहीं सोचा।

अब कोई भी इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता था। प्रकृति का यह रहस्य जांचों के माध्यम से ही सुलझेगा; लेकिन जिस पिता ने जांच करवाने से इनकार कर दिया था, उसके बच्चे की जिज्ञासा अब डॉक्टरों की जिज्ञासा से परे हो चुकी थी। जांघों के बीच लटकते ढीले लिंग और उसके नीचे नम योनि के अजीबोगरीब संयोजन के साथ पैदा हुए इस बच्चे को उसके माता-पिता नहीं चाहते थे, जो एक लड़का चाहते थे। डॉक्टरों के निर्देश सुनने के बाद, उन्होंने कामना की कि कोई परी जादू की छड़ी घुमाए और उसके शरीर पर मौजूद तिल गायब हो जाए। अचानक, उसे पवित्रता

और शुद्धता का एहसास हुआ।

अनाथालय से लोग फोन पर आए। वे अपने साथ बच्चे के लिए कपड़े, टोपी, डायपर, स्कार्फ, दस्ताने, मोजे, दूध की बोतल, दूध पाउडर और उबला हुआ पानी लाए। उन्होंने बच्चे को नहलाया, गोद में झुलाया और जैसे ही बोतल उसके मुंह से लगाई गई, बच्चा लार टपकाने लगा। यह अनुभव बच्चे के लिए बिल्कुल नया था। उसने पेशाब किया। उसने अपने लिंग के नीचे पिन के आकार के छेद से जूते पर भी पेशाब छिड़का। थोड़ी देर खर्राटे लेने के बाद वह सो गया। पहली बार वह नींद के बजाय सुकून का अनुभव कर रहा था। यहीं दिन में, माँ ने मजिस्ट्रेट के सामने बच्चे को सौंपने के दस्तावेज़ की औपचारिकताएं पूरी कीं और उसे रिहा कर दिया गया। उसे तुरंत अस्पताल से छुट्टी मिल गई और वह चली गई।

वह जोड़ा

गिरजाघर के प्रांगण में बिखरे हुए नींबू के पेड़ के नीचे गड्ढा तैयार था। प्रार्थनाएँ चल रही थीं। वहाँ मौजूद सभी लोगों के लिए प्रभु की अद्भुत कृपा स्पष्ट थी। उस अलिंगी लड़के का बेजान शरीर अब और भी काला पड़ गया था। ऐसा लग रहा था मानो वह अपने आप गड्ढे की काली मिट्टी में विलीन हो रहा हो। गड्ढा बंद हो गया। अंतिम प्रार्थना की गई। सभी ने 'आमीन' कहकर विदा ली। कृतज्ञ दंपति ने अपने सुंदर, आकर्षक बच्चे को गीली कब्र पर लिटाया और काफी देर तक वहीं रुके रहे। प्रभु ने उन्हें न केवल यह सुंदर पुत्र दिया था, बल्कि सेवा करने के लिए एक मरणासन्न नवजात शिशु भी दिया था।

ऐसा लग रहा था मानो स्वयं प्रभु ने उन्हें स्वर्गिक पिता के एक अनाथ, अपंग, निर्दोष, मरणासन्न बच्चे की देखभाल करने का अवसर दिया हो, उसी प्रेम से जैसे स्वयं प्रभु करते हैं, अंत तक उसकी सेवा और देखभाल करने का। वह अनाथ बच्चा अब उस नींबू के पेड़ के नीचे शाश्वत विश्राम में चला गया था। वह केवल कुछ ही दिन जीवित रहा; परन्तु उन्होंने उसकी सेवा करने, उसे दूध पिलाने और दिन-प्रतिदिन कमजोर होते उसके शरीर को कोमलता से सहलाने में आध्यात्मिक संतुष्टि पाई। ऐसा लग रहा था मानो स्वयं यीशु ने उस बच्चे का रूप धारण कर लिया हो। निश्चय ही, यह सब प्रभु की ही योजना थी।

प्रभु का यह कार्य विशेष था; अन्यथा वे अनाथालय में मरणासन्न बच्चे की देखभाल करने की अपनी इच्छा व्यक्त नहीं कर पाते और उस बच्चे को प्रवेश नहीं मिलता। प्रभु का यह कार्य अतुलनीय है। जैसे ही दंपति ने यीशु से प्रतिज्ञा की, दिन बीत गए। जैसा वादा किया गया था, एक पुत्र का जन्म हुआ। लेकिन प्रश्न यह था कि मरणासन्न बच्चे की देखभाल करके प्रतिज्ञा को कैसे पूरा किया जाए। ऐसा लगा मानो प्रभु ने इस काले शिशु के रूप में वह सुविधा प्रदान कर दी हो। हे प्रभु, आपका कार्य अतुलनीय है!

•

मुझे बार-बार धोखा दिया गया।

अब आँखों में पानी लाने वाले पल बहुत कम आते हैं। उम्र बढ़ने के साथ-साथ हम संवेदनशील भी होते जाते हैं। पहले तो पत्थर पर पैर रखने से भी आँखों में पानी आ जाता था। अब पैरों की त्वचा मोटी हो गई है। अब नंगे पैर भी चल सकते हैं। उम्र बढ़ने के साथ-साथ नाखून भी कुंद हो जाते हैं और त्वचा भी संवेदनशील हो जाती है। एक डॉक्टर को कम सुख और ज़्यादा दुख के बीच जीना पड़ता है। जो भी मरीज़ आता है, वह उसके दुखों का गूँधना शुरू कर देता है; लेकिन रोज़ाना एक ही खेल कौन खेलना चाहेगा? धीरे-धीरे खेल का मज़ा खत्म हो जाता है, रोमांच गायब हो जाता है। बस मरीज़ की जाँच करके उसे घर भेजना ही काम रह जाता है; लेकिन फिर भी, कभी-कभी कोई ऐसा मिल जाता है जो आपको अचंभित कर देता है और हमेशा के लिए आपकी यादों में बस जाता है।

मेरी मुलाकात एक ऐसी ही बूढ़ी औरत से हुई। झुर्रियों से भरा चेहरा, सिर पर चौड़ी किनारी वाली टोपी, मोटा दरांती, प्रशंसा से भरी आंखें और मुस्कुराता चेहरा। वह कुछ मामूली शिकायतें लेकर आई थीं। जब दवा से उन्हें आराम मिला, तो वह फिर आईं और बोलीं, 'मुझे अच्छा लगा, है ना?' उस ज़माने में, जब 'ज़रूरत महसूस हो तो डॉक्टर मर जाए' का चलन था, यह आम बात थी। फिर वह आती रहीं। कभी पड़ोसी के साथ, कभी बहू के साथ, कभी बस यूं ही। बाद में परिवार बढ़ा। बेटियां अपनी-अपनी जिंदगी में मग्न हो गईं और बहुएं भी अपनी-अपनी जिंदगी में। बेटियों की लंबी, प्रेम से हुई शादियां भी छोटी हो गईं। खुद उस बूढ़ी औरत के शब्दों में, 'जब से पोते-पोतियों को अंग्रेजी स्कूलों में भेजा गया, बहुओं ने खूब पढ़ाई की।' बहुएं आखिरकार सिर्फ बहुएं ही रह गईं। वे भी अपने पति का रुमाल कमर पर बांधकर अपनी-अपनी जिंदगी में आगे बढ़ गईं।

वह बूढ़ा था, लेकिन बहुत कमजोर था। इसलिए तमाम अफरा-तफरी के बावजूद, बूढ़ी औरत अकेली रह गई, लेकिन वह अब भी मुस्कुरा रही थी।

‘मैंने तुम्हें बेवकूफ बनाया, मैंने तुम्हें बेवकूफ बनाया’ यही उसका मंत्र था। चाहे वह अपने पोते के साथ मजाक कर रही हो या कुछ और। ‘रैंडे, तुमने मुझे बेवकूफ बनाया! तुमने मुझे बेवकूफ बनाया, तुमने मुझे बेवकूफ बनाया! तुमने मुझे बेवकूफ बनाया, तुमने मुझे बेवकूफ बनाया..!’ वह अपने पोते से भी ज़्यादा ज़ोर से चिल्लाती और अपना काम करती। उसके पास उन लोगों की एक लंबी सूची थी जिन्होंने उसे बेवकूफ बनाया था। इस सूची में उसका पति सबसे ऊपर था। यह कहना मुश्किल है कि उसने उसे कितनी बार बेवकूफ बनाया होगा।

“उन्होंने मुझे धोखा दिया, धोखा दिया, वो भी दिवाली के दिन! मैंने सोचा, मेरे मालिक ने उस साल की दिवाली पर जिम्मी का एक टुकड़ा ले लिया। उन्होंने मुझसे कहा, ‘ये तुम्हारा पड़वा है।’ मैं कह रही थी, ‘मुझे तो हार चाहिए था।’ मुझे उन पर गुस्सा आ गया। आखिर उन्हें गुस्सा क्यों आया? औरतें तो सज्जनता का मतलब नहीं समझतीं। हम ऐसे ही गुस्सा हो जाते हैं। माला ने कहा, ‘तुमने ऐसी जिम्मी ले ली, तुम इतने महंगे हो, तुम्हें पहनना भी नहीं आता।’ मैंने कहा, ‘बाबा, आपने जिम्मी ले ली, ले ली; लेकिन अब आप गले में जिम्मी का एक टुकड़ा पहनकर थोड़ी देर के लिए ही सही? हार का क्या? अगर पहनोगे तो चार पत्नियां पूछेंगी, कब ली, कहां

ली, कितना दाग लगा है? क्या पूरी जिंदगी जिम्नी पहनकर ही गहने पहनने हैं?' तब मैंने कहा, 'मैं तो उलझन में हूं!' यह सुनकर बुढ़िया मन ही मन हंसने लगी।"

इसमें कोई हैरानी की बात नहीं कि इतनी बूढ़ी दादी अपने पति के प्रति इतनी निर्दयी होंगी। मैंने एक बार उनसे पूछा था...

"हमारी शादी से पहले ही शादी हो गई थी। घर बिल्कुल बगल में था। एक सुंदर, हरा-भरा बगीचा था। मुझे अच्छा लगता था। वह मेरा हाथ पकड़कर नरसोबा के बगीचे तक रास्ता बनाते हुए घर आते थे। फिर मैं 'आओ-जाओ' क्यों कहती थी? लेकिन जब मैंने उन्हें चारों लोगों के बीच देखा, तो मुझे इसकी आदत हो गई और मैं बाकी औरतों की तरह उन्हें 'अहो' कहने लगी। लेकिन अगर मैं ज़ोर से 'अहो' भी बोलती, तो तुरंत मन ही मन 'आरोन विजया' सोच लेती। फिट्टम फट! मैं उन्हें ऐसे ही बहलाती..." एक बार फिर मैं मन ही मन हंसने लगी। "लेकिन जब मैं रिश्ते में आई, तो अपने घर में होने पर मैं विजया कहती थी। सुबह के पांच बज रहे होते थे... या फिर रिश्ते में आने का समय ही नहीं होता था। रिश्ते में रिश्ते से बढ़कर भी बहुत कुछ था। फिर जब मुझे गुस्सा आता, तो मैं 'अरे-तुरे' कहती थी। रिश्ते का नाम ही गुस्सा हो गया था, आप जानते हैं। अब प्यार कम और गुस्सा ज़्यादा है, इसलिए मेरे मुंह से बस 'अरे-तुरे' ही निकलता है।"

उनके अनुसार, यह कहना मुश्किल था कि कौन कब और कैसे धोखा देगा। उन्होंने मोतियाबिंद का ऑपरेशन करवाया। उन्होंने कहा... "मुझे बेवकूफ बनाया गया, मुझे बेवकूफ बनाया गया! वह घर के कोने में पड़ा रहता था। वह सीढ़ियों पर रेंगता था। लेकिन अब वह सांप जैसा दिखने लगा है! उस आंखों के धब्बे का क्या कहूँ, बस ऑपरेशन करवा लो ताकि तुम अपने पेड़ पर जा सको। इस उम्र में ज्यादा देखना ठीक नहीं है। वे रिश्तेदार कहते थे, 'पिछवाड़े में मत जाओ', मतलब कि वह अजीब लगता है। लेकिन उन्होंने मुझे बेवकूफ बना दिया, उस बूढ़ी औरत को। अब वह बहुत साफ दिखने लगा है। सुई में धागा पिरोना, दूर से आया एक आदमी... मेरा प्यारा शरद पवार

कताई कर रहा है। लेकिन मैं इतना देखने के लिए क्यों कहती हूँ? खैर, जब आप देखते हैं, तो आपको देखना पड़ता है, जब आप देखते हैं, तो आपको बोलना पड़ता है... और वही घोटाला और अराजकता... अब आप छेद देखते हैं, आप फैलाव देखते हैं, आप सब कुछ देखते हैं। फिर मैं बोलती हूँ, फिर दुल्हन बोलती है। फिर बातचीत जारी रहती है। तो वह कहती है, "उस आदमी ने उन आँखों से मुझे बेवकूफ बनाया।"

यह सुनकर मुझे हंसी आ गई कि साफ देख पाना किसी डॉक्टर की सफलता नहीं, बल्कि असफलता है। उसकी एकमात्र उम्मीद यही थी कि वह खुद से शौचालय जा सके, और वह अपनी उम्मीदों से परे कोई सफलता नहीं चाहती थी। यह भी एक धोखा था। अच्छा हुआ कि उसने इस उम्र में ज्यादा नहीं देखा, यही उसकी व्यावहारिक समझ है। इतने वर्षों के अनुभव का नतीजा।

दादी को दुनियादारी का थोड़ा ज्यादा अनुभव था। उनका पालन-पोषण एक गाँव में हुआ था। बड़े होते ही उनकी शादी हो गई और वे मुंबई में अपने ससुराल चली गईं। वहाँ रहते हुए दादी काफी समझदार हो गई थीं। इसके अलावा, उन्होंने परिवार का खर्च चलाने के लिए बीस साल में दस तरह के व्यवसाय किए। उन्होंने एक अनाथालय में दाई का काम किया। फिर मीशा ने वहाँ कपड़े सिलने का काम शुरू किया। कुछ दिनों तक उन्होंने एक छोटी सी दुकान भी चलाई। जब इससे भी काम नहीं चला, तो उन्होंने ठेला चलाया। उन्होंने घर के बने मसाले बेचे। उन्होंने एक रिक्शा खरीदा और उसे किराए पर दिया। वे शिवसेना की शाखा प्रमुख भी बनीं। वे इन सभी व्यवसायों और उनमें शामिल घोटालों का दिलचस्प वर्णन किया करती थीं।

“हम कहते थे कि घर का सारा काम हमारा है। है ना? मेरे घर में बारह सदस्य थे। कितने? बारह! लेकिन अगर एक आता, तो दूसरा उठता, और फिर तीन आ जाते। मुझे तो पता भी नहीं था। सुबह चूल्हा जलते ही शाम का चूल्हा जल उठता था। और तो और, सबको जल्दी रहती थी। वो अपने घोड़े पर सवार होता था। उसे चूल्हे से उतरने का भी समय नहीं मिलता था। पर मैं बेवकूफ बन गई! बच्चे जो अपना जीवन बिताना चाहते थे। सब छोटे थे। मैं उन्हें बड़े भाई की तरह प्यार करती थी। ये एक मज़ाक था। ये मेरी ज़िंदगी थी। दो साल बाद, जब मेरी सगाई हुई, तो मैं कहती थी, ‘आंटी, मैं अपनी पत्नी के साथ आपके घर आऊँगी। घर में चूल्हा बनाऊँगी तो क्या करूँगी?’ लेकिन क्या मैं आई? मेरी शादी हो गई। मुझे एक बड़ा कमरा मिला। जब मैं वहाँ पहुँची, तो मैं बिखर गई! न कोई चिट्ठी, न कोई बधाई। मैं इंतज़ार कर रही थी, वो आज आएगा, वो कल आएगा... कोई चिट्ठी नहीं... देखो, उसके बाद तीन और लोगों की शादी हो गई।” फिर वे मिलने आए, फिर वे अपनी पत्नियों को अपने पतियों पर दावा करने के लिए लाए, और अपनी चाचियों को भी अपने पतियों पर दावा करने के लिए लाए! मैं पूरी तरह से उलझन में था, मैं उस नई लड़की को देखना चाहता था। चाहे वह बहू हो या पूर्व पत्नी... मैं उसकी पत्नी को लाखों डॉलर में देखना चाहता था, लेकिन वह अपने पति की चाची को नहीं देखना चाहती थी। उसका सिर झुका हुआ था, उसकी नज़रें पैरों पर टिकी थीं। क्या उसने इसे स्वीकार किया, या उसने कुछ कहा, 'चलो!' ये तो बिल्कुल बच्चे हैं। फिर वह इतना प्यार लेकर क्यों आई? ...देखो, मेरे अंग टूट रहे थे... मैं समाज के धोखे में आ गया! अब कौन कहाँ है, वे हैं या नहीं, मुझे कुछ नहीं पता।

“मैं एक कौआ पालती थी। मतलब, क्यों पालती, वो तो रोज़ मेरे पास आकर मुझे चोंच मारता

था। पर मैं उसे पहचानने लगी। पूरा काला, बस एक पंख के नीचे थोड़ा भूरा था। उसकी गर्दन थोड़ी लंबी थी। मैं उसकी आवाज़ की नकल भी करती थी। फिर मैंने उसे पाल लिया। कभी उसका सिर मछली जैसा होता था। कभी वो थोड़ा सा, कभी थोड़ा सा। एक दिन दोपहर में, वो थोड़ा सुस्त था, और बाहर बहुत सारे कौए थे। मैंने खिड़की से बाहर देखा, वो बिजली के तार से लटका हुआ था। उसकी जान निकल गई। मैं बहुत दुखी हुई। उस दिन, मैंने उसके लिए एक गड्ढा खोदा। मैं घर पर नहीं रुकी। कंजरमार्ग पर गाँव वाले के घर में उसकी मौत हो गई, मैंने उसे अलविदा कहा और सामने वाली हीराबाई के घर चली गई। उन्होंने मुझे पकड़ लिया! तुम्हें इस हालत में देखकर मैं क्यों मरूँ? वो यहाँ दूर जाने के लिए नहीं आया था। उस समाज से मेरा क्या लेना-देना? झूठ। अब मैं उसे लगातार अपनी आँखों के सामने क्यों देखूँगी? मैं घास खाती थी। हर दिन। पोशिंदी मैं ही थी। है ना? तो पिताजी मेरी देखभाल किए बिना कैसे मर गए? क्या उन्होंने मुझे धोखा नहीं दिया?

कौवे की यह कहानी सुनकर कालवाला दुखी हो गई। कौवा उसका भोजन था, इसलिए उसकी आकस्मिक मृत्यु उसे बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं थी। क्या वह उसे चिढ़ा रहा था? वह जहाँ भी भोजन मिलता, चोंच मारता होगा। वफादारी का बंधन दादी ने स्थापित किया था। एकतरफा। लेकिन एक बार प्यार हो जाने पर, दूसरे पक्ष की यह जिम्मेदारी होती है कि वह उसे धोखा न दे। कौवा तो कौवा ही है। लेकिन उसकी कोख के बेटे ने भी उसे उसी तरह धोखा दिया था। उससे अधिक जिम्मेदारी की अपेक्षा करना गलत नहीं था।

“थोरला लाई माईचा। उसने पढ़ाई तो की, पर नौकरी नहीं मिली। घर आने में उसे शर्म आती थी। वह चोर की तरह रहता था। चाकू से खाना खाता था। मैंने उसे समझाया, ‘अरे, तुम इतने जिद्दी क्यों हो?’ मैंने कहा, चार दिन राजा की तरह क्यों रहना चाहते हो? और फिर इंटरव्यू के लिए क्यों गए? वहाँ किसने क्या कहा; आए, अचानक घर से चले गए। जाते ही रेल की पटरी के नीचे आकर उन्होंने अपनी जान दे दी। हम घर और रेल की पटरी के बीच फंस गए हैं। क्या कहूँ और क्या न कहूँ, मैं असमंजस में हूँ! क्या अब मेरे बेटे के खोने का दुख थोड़ा कम है? लेकिन अगर मैं रोती रहूँ तो क्या होगा? रात होते ही, जब मैं सोने जाती हूँ, तो मेरी माँ रोने लगती है। उजाला होते ही, मैं अपने दुख के बारे में शिकायत नहीं करना चाहती, मैं असमंजस में हूँ।”

यह सदमा बहुत गहरा था। बुढ़िया जल्दी ही संभल गई। लेकिन बुढ़िया? हालांकि तब वह बहुत बूढ़ी नहीं थी, फिर भी जो चुप हो गई थी, वह कुछ नहीं बोलती थी, कुछ नहीं करती थी। बस घर पर ही रहती थी। फिर बुढ़िया ने खुद ही जिम्मेदारी संभाली। नायर उसे अस्पताल ले गया, उसका इलाज किया और उसकी जिंदगी को फिर से पटरी पर लाया। लेकिन उदासी और अवसाद का यह दौर समय-समय पर सिर उठाता रहा। सब कुछ ठीक होने के बावजूद, कभी-कभी बुढ़िया महीनों तक चुप रहती थी। जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती गई, यह चुप्पी भी बढ़ती गई। बुढ़िया एक बार फिर शिकायत करने आई कि उसे धोखा दिया गया है। उसकी एकमात्र शिकायत थी, "वह न केवल चुप रहा, बल्कि उसने लड़ाई भी नहीं की, हे भगवान!"

तुम लड़ना क्यों चाहते हो?

समय बीतता है। एक बुद्धिमान व्यक्ति के लिए झगड़ा शुरू करना अच्छा नहीं होता। मैं कब तक

बस उसके चेहरे को घूरती रही और वह मेरे चेहरे को? असल में, मैंने उसे मूर्ख बनने की आदत डाल दी। पहले, जब वह बहुत गुस्सा हो जाता, तो मैं कहती, चुप रहो, चुप रहो! लेकिन मुझे एहसास हुआ कि मुझे इसकी भरपाई इसी तरह करनी होगी। यह सजा मिल गई। मेरी माँ कहती है, बैठ जाओ, बैठ जाओ और हवा देखो, नहीं तो तुम चुगली करने लगोगी! मेरी माँ कहती है, चलो अभी करते हैं। नहीं तो मैं कहूँगी, ठीक है, और फिर से चुगली करने लगूँगी। मैं कहूँगी, मेरी माँ के घर जाओ, नहीं तो तुम स्टैंड-अप कॉमेडियन बन जाओगे! यह कैसा कठपुतली पति है? क्या यह पड़ोसी तंबाता की आवाज़ है? और उसके पिता, वह बापू, कहते हैं... पूरे समय, जो झगड़ा चल रहा था, उस दोपहर वक्ता सो गया और चुप हो गया। इसे सन्सार कहते हैं। अगर नहीं, तो हमारा मतलब है... चुगली बढ़ रही है, गुस्सा निगल रहा है और चुप्पी छा रही है। "पायथन एक व्यक्ति है, और मैं एक पायथन हूँ।" यह हमारा अपना 'इनोडा' है, और इसे सुनकर हमें हंसी आती है।

कुल मिलाकर, नागवंशी अपनी नानी से बहुत प्यार करते थे। वह अक्सर दोमुँहे लोगों से मिलती थीं, जो मन में बैर रखते थे और दूध के रूप में जहर उगलते थे। दामाद तो नाग से भी अधिक दुष्ट था। नाती-पोते उनके पति के लिए तिरपाल की तरह थे। उनकी संख्या भी बहुत थी। उनके उपनाम भी भोंग्या, राक्षस, बुक्कड़ जैसे सतही और भद्दे थे। लेकिन नाती-पोतों की यादें नानी को असीम स्नेह से भर देती थीं। नानी उनकी शरारतों से उत्साहित हो जाती थीं और बेतुकी शिकायतें करती थीं। हर बार नानी उनकी शरारतों से तंग आ जाती थीं। बेशक, सिर्फ यह कहना कि वह थक गई हैं, उनके दिल को छू जाता था। वह अपने नाती-पोतों की बहुत प्रशंसा करती थीं; लेकिन बुद्धिमान नानी अपने नाती-पोतों के मामले में बड़ी मूर्ख साबित होती थीं। यह उनकी बड़ी मूर्खता थी कि उन्हें अंग्रेजी नहीं आती थी।

“अरे! मैं अंग्रेज़ी सीख रहा हूँ! 'यहाँ आओ' का मतलब 'गँवार' होता है और 'वहाँ जाओ' का मतलब 'मर जाओ'। 'ऊपर' का मतलब 'ऊपर' और 'नीचे' का मतलब 'नीचे'। वे एक-दूसरे की तरफ मुँह करके बात करते हैं और जब मैं कुछ कहता हूँ, तो वे हँसते हैं। वे मुझे बेवकूफ बना रहे हैं, वे मुझे बेवकूफ बना रहे हैं! मुझे नहीं पता क्या। परसों, घर में सबने खूब हंगामा किया। उन्होंने बस शोर मचाया। पलंग पर रखा सामान नीचे था और चटाई पलंग पर थी, बस यही हाल था। चलते-चलते मैं उस सामान से ठोकर खा गया। मैंने सोचा, 'यह सामान किसने नीचे उतारा?' मुझे कौन क्या बता रहा है? सब लोग हँसने और हंगामा करने लगे। मेरे कोई दोस्त नहीं थे। मुझे बेवकूफ बना रहे हैं, मुझे बेवकूफ बना रहे हैं!”

जब सबने उसे धोखा दिया, तो क्या उसका अपना शरीर भी कुछ समय के लिए पीछे रह जाएगा? उस शरीर ने भी उसे धोखा दिया! उसे पता भी नहीं था कि मृत्यु ने उसके दिल पर गहरा आघात पहुँचाया था। मैंने उसके बच्चों को एक अस्पष्ट सा विचार दिया। इलाज महँगा और अविश्वसनीय था। अब मुझे शारीरिक पीड़ा के पीछे आर्थिक और पारिवारिक बोझ दिखाई देने लगा। इस पीड़ा की पतली परत के पीछे, मुझे अगले अध्याय के पात्रों की हलचल भी दिखाई देने लगी - कमज़ोर चेहरे वाला बूढ़ा पति, असहाय बेटी और ज़िद्दी बेटा। उनकी अपनी-अपनी ज़िंदगी थी। उन पर नई पीढ़ी की ज़िम्मेदारियाँ थीं। बूढ़ी औरत की मृत्यु का कोई दुख नहीं था। फिर पर्दे के पीछे

ज़िम्मेदारी के हस्तांतरण का नाटक शुरू हुआ। जैसे ही मैंने मंच पर नाटक देखा, उसके परे, जैसे ही गलती से पर्दे के पीछे बिखरी रोशनी में अप्रयुक्त नेफ्था के टुकड़े, पुराने लैंप और कोयले के चूल्हे दिखाई देने लगे, मुझे उसके और उसके बच्चों के जीवन में चल रहे झगड़े, पुराने हिसाब-किताब, घिसी-पिटी ईर्ष्या और भाई-बहनों की प्रतिद्वंद्विता दिखाई देने लगी।

दो-तीन महीने बीत गए और पर्दा फाड़ने वाला हाथ दिखने लगा!

बस यूं ही, एक दिन वो आ गई। उस दिन का माहौल कुछ अलग था। उदास, मुरझाया हुआ चेहरा; गहरी आंखें, फीकी मुस्कान। आज वो बहुत अलग दिख रही थी। वो आई और बोली, “मैं साफ-साफ कह रही हूं, उस बूढ़े आदमी ने मुझे खूब धोखा दिया है। उसका हाथ थामकर चले जाओ।” मैं मुस्कुरा उठा। उस बुढ़िया के जीवन के सारे दुख ‘हर घर में मिट्टी का चूल्हा’ जैसे थे; लेकिन ये कहानी मेरे लिए नई थी। अब उसने किसका हाथ थामा था? कोई तामसगीर, कोई पड़ोसी? उसके मालिक को इस बुढ़िया में क्या कमजोरी दिखी होगी जो बुढ़ापे में भी इतनी खूबसूरत दिखती थी?

दरअसल, मैं उस बुढ़िया की बातें ध्यान से सुन रहा था, और उससे पूछना चाहता था, "तुम्हें कैसे धोखा दिया गया?" लेकिन मैं उस बुढ़िया की धोखे की मीठी कहानी सुनना बिल्कुल नहीं चाहता था। यह उसकी "हाँ" वाली छवि से मेल नहीं खाती थी। लेकिन वह बुढ़िया, मेरे "कैसे?" के जवाब को जानने के लिए बेताब थी, और बोलती ही रही। आखिरकार, मैंने उसकी ज़िद के आगे हार मान ली। मैंने उससे पूछा, "कैसे?"

"बूढ़ा आदमी तो पहले ही चला गया, फुद! वह यमराज का हाथ पकड़कर चला गया!"

जैसे ही मुझे इस वाक्य का अर्थ समझ आया, मैं स्तब्ध रह गया। मेरी आँखों में आँसू भर आए। उसे ऐसा लग रहा था जैसे बूढ़े आदमी के इस दुनिया से चले जाने से उसके साथ धोखा हुआ हो। जो भी होना था, वह उन दोनों के साथ रहने की उसकी इच्छा थी। उसे पूरा विश्वास था कि उसकी हर इच्छा पूरी होगी। बूढ़ी औरत ने गहरी साँस ली और मेरे सामने संभल गई। वह उठी। उसने एक बार खुलकर मुस्कुराया। अब सारा तनाव दूर हो गया था। उसने अपने काँपते, झुर्रीदार, पतले हाथों को मेरे चारों ओर लपेट लिया, उंगलियों को सिर के ऊपर रखकर, और कुछ बुदबुदाती रही। उसके पीले हाथ और उभरे हुए टैटू मेरी आँखों के सामने छा गए। इससे पहले कि मैं कुछ पूछ पाता या बोल पाता, वह बुदबुदाई, 'बूढ़े आदमी ने मुझे धोखा दिया, मैं तो जा ही रही हूँ!' और पलक झपकते ही चली गई।

•

बागुलबुवा

• लैंगिक समानता के नारे लगाते हुए, बड़े धूमधाम से एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया। मुझे 'डॉक्टरों के नज़रिए से समाज में लैंगिक भेदभाव' जैसे किसी विषय पर बोलना था। उस फाइव-स्टार होटल की ठंड में, मैंने अपना भाषण समाप्त किया, तालियाँ बटोरीं और उपस्थित लोगों का अभिवादन किया, कुछ पल के लिए अपनी सेलिब्रिटी वाली छवि बरकरार रखी और कॉफी स्टॉल की ओर चल दी। अगला कार्यक्रम 'एल.जी.बी.टी. (समलैंगिक आदि) और उनके मुद्दे' जैसा कुछ था, जिसमें मेरी बिल्कुल भी रुचि नहीं थी। अब मैं बोलने से कतराने लगी हूँ। मेरा तरीका है जाना, बोलना और गपशप करना। मैं शायद ही कभी दूसरों की सुनती हूँ। केवल तभी जब कोई ज़रूरी बात हो। इसलिए गपशप करने से पहले, मैं किसी ऐसे व्यक्ति को ढूंढने लगी जिससे कॉफी पीते हुए शांति से बातचीत कर सकूँ। उसी क्षण, एक लंबी, गोल-मटोल नटवी महिला मज़बूत कदमों से सीधे मेरे पास आई। “अभी मेरा एक प्रेजेंटेशन है। आइए सुनिए। यह बहुत अच्छा और महत्वपूर्ण होगा। ज़रूर आइए!” उसने मुझे इस तरह का उत्साह दिया। मैं सदमे में वहीं खड़ा रहा, यह सोचकर कि यह महिला कौन है, जिसकी कोई पहचान या अभिभावक नहीं है, जो अचानक इस तरह अविवाहित लोगों के बीच आ गई है।

“क्या आप मुझे पहचान नहीं पा रहे हैं? मुझे भी नहीं पता कि मैंने आपको पहचाना या नहीं; लेकिन मैंने वक्ताओं की सूची में आपका नाम पढ़ा और मुझे लगा कि आप ही हैं। मैंने आपको माघा से बात करते हुए देखा और तुरंत पहचान लिया।”

मेरे चेहरे पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न उभर आया। उसी क्षण, उसने एक आँख चौड़ी की, दूसरी को सिकोड़ा और बोली, "बागुलबुवा!" मुझे पूरी तरह से हैरान देखकर वह हवा की तरह चली गई।

उसने मुझे मेरे स्कूल के दिनों की याद दिला दी। स्कूल में हम सब बाज़ार में एक फेरीवाले को 'बागुलबुवा' कहकर चिढ़ाते थे। तो पक्का था कि वह स्कूल की ही कोई लड़की थी। पर कौन? सुकन्या? वृंदा? जानकी? मेहर? ओह! मुझे बिल्कुल याद नहीं आ रहा। मैंने यह सोचने की कोशिश करना छोड़ दिया कि वह कौन थी। कॉफ़ी पीते हुए मैं सामने की कांच की दीवार से बाहर के हरे-भरे नज़ारे को देखती रही। अचानक, गाँव का साप्ताहिक बाज़ार लोगों से भर गया। गर्मी बहुत तेज़ थी। लोगों की चहल-पहल शुरू हो गई... मैं और मेरी दोस्त सिर ऊँचा करके बागुलबुवा को ढूंढ रहे थे...

बागुलबुवा का असली नाम क्या था, कौन जाने! बाज़ार में सब उसे 'बुवा' कहते थे और हम उसे 'बागुलबुवा' कहते थे। बागुलबुवा सभी लड़कों की दिलचस्पी और जिज्ञासा का केंद्र था। वह दिखने में बुरा नहीं था, बल्कि बहुत सुंदर था। वह गठीला, लंबा और उतना ही आकर्षक था। बड़ा लेकिन सुस्पष्ट चेहरा, लंबी भुजाएँ... लेकिन जैसे ही हम उसकी आँखों में देखते, हम भ्रमित हो जाते। उसमें कुछ खास था। हम जानना नहीं चाहते कि वह क्या था। वह बच्चों से, बोरी से भाग जाता था। अमावस्या की रातों में वह पूरी रात नदी में खड़ा रहता था। वह कभी पोत्रज था। मंगलवार और शुक्रवार को एक देवी उसके शरीर में प्रवेश करती थी। इसीलिए वह अपनी बोरी के अंदर खाना चोली पहनता था। उसके बाल लंबे, बिखरे हुए, गर्दन से भी नीचे तक बढ़ते थे। कभी-

कभी उसके सिर पर बालों का गुच्छा होता था। उसके गले में बड़े रुद्राक्ष, हीरे, कवाड़ा और गंडेडोर की मालाएँ होती थीं। कलाई पर एक अंगूठी, कलाई पर एक अंगूठी। एक पैर में अंगूठी। कहा जाता था कि एक बार वो किसी मुसीबत में फँस गया था और पुलिस ने उसकी एक अंगूठी ले ली थी, यही बात पूरे गाँव में चर्चा का विषय बन गई थी। माथे पर एक बड़ा सा तिल, घनी काली भौहें...और वो आँखें...कितनी भयानक थीं। एक आँख बड़ी थी, जो हमें भेदक निगाहों से देखती रहती थी। दूसरी भी बड़ी थी, पर उसमें कुछ अजीब सा था। हम आँखें फाड़कर उस आँख को देखते रहते थे। किसी ने हमें बताया था कि उसकी एक आँख बकरी की है; पर हमारे लिए यह बताना मुश्किल था कि कौन सी। हम, यानी गाँव के वो सभी बच्चे जो उस समय चौथी या पाँचवीं कक्षा में पढ़ते थे। जब हम उससे मिलते, तो हमारी खोजी निगाहें और उसकी भेदक निगाहें मिलना तय था। वो आँखें ही उसकी पहचान थीं। जब हम उसके बारे में बात करते, तो हम एक आँख छोटी और दूसरी बड़ी करके कहते, "बग्गुलबुवा!" यही हमारे लिए ज़ोर से हँसने का काफी कारण होता था।

वह बाज़ार चौक में साफ़-सुथरे पायजामे और लंबे कुर्ते में खड़ा रहता था। लोग उसके पास इसलिए जाते थे क्योंकि उसके पास एक बहुत बड़ा तख्ता होता था। उसमें एक लंबी छड़ी लगी होती थी। इस छड़ी की मदद से वह तख्ते को बहुत ऊपर उठाता था। तख्ते पर रस्सियाँ क्षैतिज रूप से बिछी होती थीं और उन रस्सियों पर नवलाई की पूरी दुनिया लटकी होती थी। हवा में ऊँचे-ऊँचे गुब्बारे झूलते, गुब्बारे वाले तोते, बत्तखें, बंदर, छल्ले और न जाने क्या-क्या! फिर रंग-बिरंगी मालाएँ हवा में लहराती। कुछ एक, कुछ दो। फिर प्लास्टिक के तोते, गुड़िया, बिल्लियाँ, कुत्ते, भालू। नीचे की पंक्ति में कारें, बसें, डबल डेकर बसें, रिक्शा, ट्रक, गिग्गी जैसे खिलौने होते थे। फिर वहाँ खड़खड़ाहट, सीटियाँ, घूमने वाले खिलौने, कैमरे, दूरबीन, बांसुरी, टिक-टिक वाले खिलौने, रंगीन कागज, पहेली सुलझाने वाली रस्सियाँ, एक छड़ी पर चढ़ता हुआ बंदर, अपने हाथ-पैर हिलाता हुआ एक विदूषक, एक दौड़ता हुआ साँप, एक पंखा जो मुड़ी हुई पट्टी से धकेलने पर ऊँचा उड़ता था, पंखों वाली टोपियाँ, पाइप, घंटे, रस्सियाँ, ताबीज, चश्मे, रंगीन गॉगल्स, घड़ियाँ, डफली, छोटे ढोल, गेंदें, पिना, रिबन, भटुकली का एक सेट, डॉक्टर-डॉक्टर खेलने का एक सेट, साँप के ताबीज, शतरंज, चिंचोक, चिंचा, आंवला, बोरकूट, जादू की छड़ें... सपनों के खिलौनों की दुनिया हथेली पर संतुलित होकर बाजार में घूम रही थी।

दूर से हमें हवा में लहराते गुब्बारे दिखाई देते। फिर भीड़ में सिर उठाकर हम उसके पीछे-पीछे चलते। घर पर बड़ी मुश्किल से कमाए हुए एक-दो रुपये हाथ में लिए हम आखिरकार उसकी अनोखी दुनिया के सामने खड़े हो जाते। इस रंगीन संगीत में, क्या लें और क्या न लें, हमारा मन उलझन में पड़ जाता। हम उसकी नजरों में देखने की लगातार कोशिश करते रहते। बाजार की गर्मी, लगातार भागदौड़, लोगों और प्याज, मसालों, मछली और मिठाइयों की महक। सभी दुकानदार ग्राहकों से बहस करने में व्यस्त थे। किसी के थैले का ढक्कन टूट जाता, किसी का थैला फिसलकर गिर जाता। किसी की घंटी मामूली वजह से बज उठती, किसी का हरा धनिया बकरी चुरा ले जाती। चारों ओर यही अफरा-तफरी मची रहती। लेकिन बागुलबुवा की चमकीली, रंगीन दुनिया ने हमें कैद कर रखा था।

यह आदमी, जिसकी एक नज़र से ही हमारे नन्हे दिल कांप उठते थे, बात करते ही एकदम शांत हो जाता था। “क्या चाहती हो, नन्ही?” वह कोमल स्वर में पूछता। उसकी आवाज़ बहुत मीठी थी, उसके स्वरूप के अनुरूप। वनराजा सीने से हवा भरता, अपना सिर उठाकर जंगल को हिला देने वाली भयानक गर्जना को भेदता, और सोचो अगर उसके गले से सिर्फ एक म्याऊं की आवाज़ निकले तो कैसा लगेगा? वही उसकी आवाज़ थी।

वो बीच से मर्दाना आवाज़ निकालते थे। तो फिर सवाल ही क्या! शादी के बैंड से भी ज़्यादा कर्कश आवाज़ में युगल गीत गाने के लिए उनकी बहुत मांग थी। शादी के दौरान वो व्यस्त थे। इलेक्ट्रिक ऑर्गन, बैटरी, एम्पलीफायर जैसे सारे उपकरण एक हाथगाड़ी पर रखे थे। गाड़ी चारों तरफ से सजी हुई थी। मोर, हाथी आदि के डिज़ाइन बने थे। इसी तरह इसे मयूर ब्रास बैंड या गजराज ब्रास बैंड कहा जाता था। वहाँ से एक तार लटककर एक बड़े लाउडस्पीकर तक जाता था। कुछ छोटे लड़के उस लाउडस्पीकर को बांस की नोक पर उठाते थे। जैसे ही शादी शुरू होती, बागुलबुवा 'हैलो' कहते... और क्या आश्चर्य! उस तुरही से आवाज़ आती, "हैलो, हैलो, हैलो!" हमें लगा कि ये सब बागुलबुवा का काम है। शादी के बाद हमारी घोड़ी भी ये सब देखने निकल जाती। जैसे ही वायलिन की कर्कश आवाज़ लयबद्ध होती, बागुलबुवा लता की आवाज़ में 'कोयल बोली' गाना शुरू कर देते। तुरंत कोयल की आवाज़ आती, 'कु'। फिर लता कहती, 'दुनिया डोली', फिर कोयल की आवाज़, 'कु'... और जैसे ही रफ़ी की बारी आती, वही आवाज़ सुनाई देती। लता, कोयल और रफ़ी अपना एकतरफ़ा करतब दिखाते रहते। देखो, खुश! कोई खुशी-खुशी हमारे हाथों पर कुछ रख देता। बागुलबुवा खुशी-खुशी अपनी जेब से आंवला या जिंच निकालता और कहता, "भागो लड़कों, घर पर तुम्हारा इंतज़ार हो रहा होगा।" और वह गुंडे से कहता, "भूख लगी है क्या? चलो, बाज़ार चलते हैं।"

उन्हें उस गुंडे से खास लगाव था। वे उसे खरखंडे के एक होटल में ले जाते, उसे भाजी, जिलबी और दूसरी चीज़ें खिलाते। कुल मिलाकर, जब भी वे बागुलबुवा से मिलते, वे उसे गुंडा समझते। उन्हें गुंडों से ज़रा भी डर नहीं लगता था। फिर धीरे-धीरे हम भी उनके साथ हो गए। बाज़ार जाने से पहले, वे मारुति के चबूतरे पर बैठ जाते और मेज़ सजाते। कभी-कभी हम भी उनके साथ जाते। वे गुब्बारे फुलाते, साइकिल पंप से उनमें हवा भरते और फिर उसकी तस्वीरें बनाते। एक बार गुब्बारा फूल जाए, तो उसके दो तंबू तैयार! एक छोटा, एक बड़ा। एक मुँह, एक पेट। वे उसमें खीरे के गुब्बारे की एक लंबी पूंछ लगा देते। वे खीरे का एक और गुब्बारा उसके गले में बाँध देते... और बंदर तैयार! कभी-कभी हम चबूतरे पर पाइप की नोकें, सीटी, रंगीन कागज़, पंख जैसी चीज़ें फैलाकर उसके लिए सुंदर-सुंदर डिब्बे बनाते। हम साइकिल के टायर के रबर को डंडियों के सिरों पर लगाकर एक झुनझुना बनाते। हम रबर के खिलौने के नीचे सीटी लगा देते। वहीं मुझे पता चला कि तोते, बगुले और बंदर सभी एक ही तरह की सीटी बजाते हैं।

धीरे-धीरे बागुलबुवा से मेरी अच्छी दोस्ती हो गई। मैं शिद की नाव से तो परिचित था, लेकिन बागुलबुवा ने मुझे सब कुछ सिखाया: शिद की नाव, दोहरी नाव, तिलगुला का डिब्बा, फोटो फ्रेम। होली के उत्सव के लिए मुखौटे बनाने में उन्हें महारत हासिल थी। अगर बागुलबुवा को मुखौटे बनाने होते, तो वही बनाते। गत्ता, डोरी, रस्सी, कैंची, ब्लेड, चाकू, खाली रील, गोंद, ग्लू, जिग्स,

स्टिलेटो, ग्लिटर, चकमक पत्थर, पतंग का कागज, गोटी का कागज, झंडे का कागज, रुमाल, ये सभी ज़रूरी चीज़ें उनकी मेज के पीछे रखे थैले में रहती थीं। हमें उस थैले को छूने की सख्त मनाही थी। लेकिन उस बदमाश को पूरी छूट थी। वह उसे जादू भी सिखाता था। मुफ्त में। लेकिन वह हमें जादू तभी सिखाता था जब हम उसे खरीदते थे। सिर्फ एक व्यक्ति को। बेशक, उसी लड़के को जो खरीदता था। वह हमारे पास आता, मारुति के मंदिर के पीछे पीपल के पेड़ के नीचे घुटने टेककर हमें सिखाता था। वह अपनी ऊँची, बिल्ली जैसी आवाज़ में मंत्रों का जाप करता था। वह हमसे उन्हें बुलवाता था। वह हमसे जादू करवाता था। वह हमें तब तक मंत्र निगलने के लिए मजबूर करता था जब तक हम पूरी तरह संतुष्ट न हो जाएँ। वह हमें ऐसे आशीर्वाद देता था, 'अब जाओ। उसे मार डालो, उसके दोस्तों को चौंका दो और हमें विस्मित कर दो!' और फिर उसका गला पकड़ लेता था।

हवाई जहाज को घोड़े से खींची जाने वाली गाड़ी बनाने का जादू अनोखा था। वहाँ एक कांच का टुकड़ा रखा जाता था जिसके बीच में एक खिड़की होती थी। उस कागज पर, अलग-अलग वाहनों के चित्र दोनों तरफ, एक के ऊपर एक रखे होते थे। पहले, हवाई जहाज को इस तरह मोड़ा जाता था कि वह कांच पर आ जाए। फिर, हवाई जहाज को कांच के दूसरी तरफ से दिखाया जाता था। फिर, वे पूछते थे, अब हम कांच में कौन सा चित्र रखें? मान लीजिए कि हमें घोड़े से खींची जाने वाली गाड़ी चाहिए, तो अब, मोड़ते समय, हम इस तरह मोड़ना शुरू करते थे कि घोड़े से खींची जाने वाली गाड़ी कांच पर आ जाए। खोलते समय, हम उसे दूसरी तरफ से एक मंत्र की तरह खोलते थे। जादू हो जाता था! जब हम जादू को अच्छी तरह सीख लेते थे, तो हम कहते थे, "जाओ, मारुति के मुंह से गुड़ खाओ।" कोई मारुति के होंठों पर गुड़ चिपका देता था। हम गिड़गिड़ाते थे, भीम के रूप में महारुद्र के मुंह को खाने का क्या मतलब है! लेकिन मेरे पिताजी हमें हिम्मत देते थे। वह कहते थे, “अरे, इसे खा लो। मैंने अभी-अभी मंत्र का उच्चारण किया है। मरुत राया तुम्हें कुछ नहीं कर पाएगी।” इतनी राहत ही काफी होती।

जब भी उनका मूड बनता है, उनका पसंदीदा गाना होता है ‘ओ दुनिया के रखवाले, सुन दर्दभरी मेरी आहन’। आखिर में, जब वो कर्कश आवाज में ‘भगवान भगवान’ गाना शुरू करते हैं, तो हम सब जोर से हंसने लगते हैं। फिर उन्हें गुस्सा आ जाता है। वो दस-बारह बार जोर-जोर से हंसने लगते हैं। माहौल गंभीर हो जाता है। ‘क्या, तुम बदमाश नहीं हो और एक बड़े आदमी पर हंस रहे हो? भाई, क्या तुम गा सकते हो, बेटा? मैं जोर से हंस रहा हूं?’ हम सब ‘धूम!’ कहने लगते हैं।

ये बागुलबुवा हैं। उन्हें बताया गया था कि घर में कोई नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि वे बीड से आए हैं और यहाँ रहने के लिए आए हैं। कुछ लोग कहते हैं कि वे मुंबई से आए हैं। एक बार जीवन का सबक सिखाने के बाद हमने उनसे पूछा, "पिताजी, आपकी पत्नी कहाँ हैं?"

“मैंने अभी तक ऐसा नहीं किया है। मैं ऐसा नहीं करूँगी। भला कौन अपनी बच्ची को उसकी माँ को सौंपेगा? मैं बारह साल की हूँ! मुझे कभी भी पति मिल जाएगा!” हम सब उसके चुटकुलों पर हँसते थे। फिर वह हमसे पूछता, “माँ कहाँ सोती है?”

"पिताजी के साथ।"

“...और पिताजी?”

"मां के साथ।"
"और आप?"
"उन दोनों के बीच।"
तब चाचाजी खूब हंसेंगे।
अपने विचित्र प्रश्नों और अपने बारे में फैली अफवाहों के कारण वह रहस्यमय और डरावना लगता था, और अपने हस्तशिल्प और खिलौनों के कारण आकर्षक भी। बच्चों का मनोरंजन करने में वह माहिर था। वह अपने थैले से कागज और कैंची निकालता और एक-दो मिनट में कागज का बंगला बना देता। छत गिर जाती, गैलरी खड़ी हो जाती और दरवाजे-खिड़कियां खुल जातीं। दिवाली के दौरान मेरे किले में बने सभी बंगले श्री बागुलबुवा की कृपा से ही संभव हो पाते थे।
एक बार दिवाली थी। स्कूल की छुट्टियाँ थीं। हम किला बनाने में व्यस्त थे। जब हम किले पर मिट्टी डाल रहे थे, अचानक हमें अपने पीछे किसी के होने का आभास हुआ। देखो तो सही - बागुलबुवा! उन्होंने चौड़ी मुस्कान के साथ किले की प्रशंसा की और थैले से शिवाजी की एक सुंदर मूर्ति निकाली। वे दूर से देखते रहे और उसे किले पर ठीक से रख दिया। वह शिवाजी किले के आकार के हिसाब से बिल्कुल सही थी। वह बहुत ही सुंदर और आकर्षक थे। हमारी बाकी तस्वीरें अब उनके सामने मिट्टी के ढेलों जैसी लग रही थीं। बागुलबुवा ने इसे खुद गुंडी के लिए बनाया था। लेकिन गुंडी अचानक गाँव चला गया था, इसलिए यह हमारे पास आ गई। जब हमने कहा कि हमें शिवाजी पसंद हैं, तो बुवा भी खुश हो गए। उन्होंने किले के चारों ओर पूरी तरह से सड़कें बनाईं। उन्होंने हमारी खुरदरी दीवारों और बुर्जों पर जादुई ढंग से ब्रश चलाया और उन्हें बिल्कुल असली जैसा बना दिया। उन्होंने एक शेर की मांद बनाई। उन्होंने एक तश्तरी में पानी का कुंड बनाया और "गाँव से गुंडे कब आएंगे?" और "स्कूल कब शुरू होगा?" जैसे सवाल पूछकर चले गए।
उसे स्कूल के बारे में बहुत जिज्ञासा थी।
आप वहां क्या सीख रहे हैं?
"इतिहास, भूगोल, गणित, भाषा..."
“आप मुझे इसे देना क्यों सिखा रहे हैं? यह महत्वपूर्ण है।”
"नहीं भाई।"
"नहाना? अपने हाथ...!"
"मैं इस श्राप से तंग आ चुका हूँ!" मेरा घमंड
“अंग आशी! चलो, अगर तुम मुझे लगातार पांच बार गाली दोगे, तो मैं तुम्हें पांच पैसे दूंगा।”
तो क्या हुआ, पाँच की जगह मैं लगातार दस बार हँसी। खुद पाँच पैसे कमाना कितना आनंददायक होता है! मैंने वह सिक्का स्कूल की लड़कियों को दिखाने के लिए बचाकर रखा था; लेकिन मुझे उन्हें बताना पड़ता कि मैंने उसे कैसे कमाया, इसलिए मैंने वह विचार छोड़ दिया। मैंने अपने पिता से वह पाँच पैसे का बोरकुट लिया और खा लिया।
येट्टा, येट्टा के पीछे-पीछे चलती रही। अब हम बागुलबुवा के खिलौनों से भी बड़े हो गए हैं। अब बागुलबुवा को न तो डर है और न ही प्रशंसा। एक बार स्कूल की छुट्टियाँ थीं, लेकिन वो छुट्टियाँ

कुछ अलग थीं। उस छुट्टी में उसके पिता ने उसके लिए 'पूरी पैंट' खरीदी थी क्योंकि वो दसवीं कक्षा में जाने वाला था। उस छुट्टी में शकीला, जो उसी कक्षा में पढ़ती थी, हमारे घर के पास से गुजरी थी। उस छुट्टी में मैंने पहली बार नदी में तैरते हुए शॉर्ट्स पहने थे, और उसी छुट्टी में बुडा की साइकिल पहली बार खराब हुई थी। उस छुट्टी में हमने गाँव की गुनगुनाहट सुनी थी। हम कुछ गलियों, रास्तों में घूमते थे जिन्हें हमने पहले कभी नहीं देखा था, और उन गाँवों और बस्तियों में जाते थे जिन्हें हमने पहले कभी नहीं देखा था। हमारी दुनिया अचानक विस्तृत हो गई थी।

नदी पार करके खेतों के बीच से घुमावदार सड़क पर साइकिल चलाते हुए हम आगे बढ़े, तो हमारे सामने एक विशाल, टेढ़ी-मेढ़ी पत्थर की दीवार और एक जर्जर द्वार दिखाई दिया। दोपहर का समय बहुत गर्म था। चारों ओर सन्नाटा पसरा हुआ था। एक पत्ता भी नहीं हिल रहा था। द्वार के पास पीपल के पेड़ पर नीली और हरी मक्खियाँ ज़ोर-ज़ोर से भिनभिना रही थीं। पीपल का पेड़ अपनी खोखली जगह से सीधे हमारी ओर देख रहा था। यह कितना अलग गाँव था! इसलिए हमने द्वार के पास स्थित जर्जर महल के प्रवेश द्वार पर रुककर जाँच-पड़ताल की। हमने क्या देखा - अंदर एक गुंडा! वह वहाँ एक जर्जर बेंच पर एक महिला के बगल में सुस्त मुद्रा में बैठा था। महिला कुछ ज़्यादा ही उत्साहित थी। हम देखते ही रह गए। वह यहाँ क्या कर रहा है? गुंडे का घर तो गाँव में ही है। जैसे ही हम गुंडे को आवाज़ देने वाले थे, महिला ने हमारी ओर मुड़कर देखा। वह नज़र! वह आँख! हम चौंक गए। वह कोई महिला नहीं थी। वह एक पुरुष था जिसने महिला का वेश धारण किया हुआ था। जैसे ही उन्होंने हमें देखा, वे दोनों अंदर के कमरे में भाग गए। जैसे ही वे दरवाज़ा बंद कर रहे थे, दरवाज़े के बगल में रखी खिलौनों की मेज़ गिर पड़ी। दरवाज़ा बंद नहीं हुआ। लेकिन खिलौनों की दुनिया मेज़ से नीचे गिर गई और अस्त-व्यस्त हो गई। एक पल के लिए, डर की एक लहर हमारे पूरे शरीर में दौड़ गई। हम अपनी साइकिलों को कसकर पकड़े रहे और तीर की तरह पैडल मारते हुए आगे बढ़ते चले गए।

उसके बाद न तो बागुलबुवा और न ही गुंडे गाँव में दिखाई दिए। चार दिनों तक बातचीत चली और गाँव में सब कुछ पहले जैसा ही चल पड़ा। इन सभी वर्षों में मेरी न तो बागुलबुवा से और न ही गुंडों से कभी मुलाकात हुई।

“मैं एक गैंगस्टर हूँ!” एक तीखी आवाज़ सुनकर मैं जाग उठा। मैं सदमे में चारों ओर देखने लगा।

“तुम अंदर नहीं आए? मैंने ज़बरदस्त भाषण दिया। सब लोग बहुत प्रभावित हुए!” ये वही मगच्ची बाई थीं। जैसे ही मैं कुछ कहने वाला था, उन्होंने मन ही मन कहा, “मैं, मैं ही तो गुंडा हूँ!”

“तुम? गुंडे?”

शुरुआती सदमे और अविश्वास के बाद, सारे खुलासे हो गए। गाँव से निकाले जाने के बाद, दोनों मुंबई आ गए। यहाँ उनकी मुलाकात एक ही धर्म और समान मूल्यों वाले लोगों से हुई। धीरे-धीरे, वे खुद को पूरी तरह से स्वीकार करने में सक्षम हो गए। बागुलबुवा को बॉलीवुड में मेकअप आर्टिस्ट की नौकरी मिल गई। उनका हुनर काम आया। उन्होंने कई गुंडों के मार्गदर्शन में काम सीखा, जो उनके साथ खाना खाते थे। अब वे भी काम करते हैं। अब एक गुंडे के रूप में उनका बहुत सम्मान है। अब उन्हें 'गुड़ियारानी जी' कहा जाता है। बचे हुए समय में, गुड़ियारानी समलैंगिकों के संगठन के लिए बागुलबुवा के साथ काम करती हैं। आज भी, वे अपनी शिकायतें

इस पांच सितारा अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के सामने रखने आई थीं।

बागुलबुवा भी खूब मजे कर रहे हैं। उन्होंने मलाड में एक कमरा किराए पर लिया है। उन्होंने गाना भी सीख लिया है। गुंडे ने अपने मोबाइल पर कांजीवरम साड़ी में उनकी तस्वीर दिखाई। वे कितने आकर्षक लग रहे थे! कितने सुंदर! उनके चेहरे पर उम्र का कोई निशान नहीं था। मेकअप का जादू! इस मेकअप ने एक और जादू कर दिया था। बागुलबुवा की खौफनाक आंखें अब एकदम साफ दिख रही थीं।

बागुलबुवा ने अपने कौशल से अपनी दृष्टि में सुधार कर लिया था। अब वह और गुड़ियारानी दुनिया को देखने का अपना नजरिया बदलने की कोशिश कर रहे थे।

•

कूलियो को आज भी वह बात याद है।

• मुझे कूलियो आज भी याद है। उन्होंने कुछ आसान लगने वाले सवालों के जवाब भी मेरे लिए मुश्किल बना दिए थे। इसीलिए मैं उन्हें हमेशा याद रखूंगा।

मुंबई-पेरिस-लीमा की तीस घंटे की लंबी और थका देने वाली यात्रा के बाद हम लीमा में उतरे। पहुँचते ही हमारी मुलाकात एक अजनबी से हुई। कद में छोटा, रंग पीला, आँखें पतली, दाढ़ी छोटी और सफेद, चॉक जैसी। उसने हवाई अड्डे के बाहर पार्किंग में हमारा स्वागत किया। उसने ढीली जींस, भड़कीली टी-शर्ट, रंगीन जैकेट, कमर पर थैली, पीठ पर बोरी और सात रंगों के बैज वाली बड़ी सी टोपी पहन रखी थी। उसने टोपी उठाकर हमारा स्वागत किया, और जब हमने उसे देखा, तो उसके सिर पर चमकीले लाल रंग के बालों का एक गुच्छा था, जो सिर के ऊपरी हिस्से से गर्दन के पिछले हिस्से तक सीधा खड़ा था। यही ध्यान अगले तीन हफ्तों तक हमारा मार्गदर्शक बना रहा।

उसने अपनी जेब से कुछ पत्ते निकाले और हमें थमा दिए। उसने कहा, “यह पत्ता, यह पत्ता। यह कोकीन है। पेरू में कोकीन जायज़ है। यह।” उसके कहने पर हमने पत्तों को मुंह में ऐसे रखा जैसे खच्चर तुलसी का पत्ता मुंह में रखता है, लेकिन उसने आगे कुछ नहीं किया। फिर उसने मुट्ठी भर पत्ते लिए, उन्हें हाथों से मसलकर अपना थैला भरा और हमें करके दिखाया। आधी दुनिया का चक्कर लगाने के बाद, अब हमें चाय की प्यास लग रही थी और कोकीन से हमारी प्यास नहीं बुझने वाली थी। हम चाय की दुकान ढूंढने लगे। आखिरकार, हमें एक कॉफी की दुकान मिली। हम उसकी तरफ मुड़े और उसे चेतावनी दी, ‘सिर्फ कॉफी, कोकीन नहीं।’

जब हम कॉफ़ी पी रहे थे, तो उसने बड़बड़ाते हुए कहा, "क्या तुम्हें हमारा सोना-चांदी ढोने में बोझ महसूस नहीं हुआ?" मैं अवाक रह गया। न तो मैं, न मेरे पिता और पुत्र कभी यहाँ आए थे; सोना-चांदी लूटने का तो सवाल ही नहीं उठता था। वह बार-बार कहता रहा कि स्पेनियों ने इसे लूटा था। सभी विदेशी उसे चोर और लुटेरा समझते थे।

पोप स्वयं भी ठीक उसी दिन और ठीक उसी समय पेरू पहुंचे थे। उनका काफिला रवाना हो रहा था। पोप को देखने के लिए बेताब लोगों का हुजूम उमड़ पड़ा था। पुलिस उनकी लहरों को रोकने की व्यर्थ कोशिश कर रही थी। पोप का जुलूस अब पार्किंग स्थल से आगे सड़कों से गुजर रहा था। हम भारतीय चुपचाप कॉफी पीते हुए खड़े थे, यह महसूस करते हुए कि पोप और यह धरती हमारे लिए बराबर हैं। दूर लोगों के हुजूम और पोप की सफेद और लाल रंग की प्रतिमा को देखते हुए, कूलियो ने अपने मुंह से कोकीन निकाली, उसे कूड़ेदान में फेंक दिया, अपनी उंगली से थूक पोंछा और पोप को तीखी और अपमानजनक गालियां दीं। हालांकि उनकी भाषा हमारे लिए अपरिचित थी, लेकिन उनकी शारीरिक हावभाव जानी-पहचानी थी। इसलिए हम समझ गए कि पोप को भी उनकी कही बातों को माफ करना मुश्किल होगा। लेकिन एक कैथोलिक देश में, हम यह नहीं समझ पाते कि पोप के प्रति इतनी जहरीली नफरत क्यों है। वह हमारी ओर मुड़ा, खुशी से मुस्कुराया और बोला, "आइए, स्वागत है, बस में बैठिए। आप सब शाहरुख खान जैसे दिखते हैं! सभी महिलाएं करीना कपूर जैसी दिखती हैं!" बॉलीवुड के इस दृष्टिकोण को देखकर हमारे

दिल खुल गए और हमारा मनोबल बढ़ गया।

दूसरे शब्दों में कहें तो, कूलियो एक गाइड है। उसने हममें से कई लोगों के साथ अमेज़न के घने जंगलों, कुस्को के बाज़ारों, लीमा की चकाचौंध, एंडीज़ पर्वतमाला की चोटियों और माचू पिचू के खंडहरों की यात्रा की। वह आसानी से ओलायताम्बो, उरिबाम्बो और गोलमटोल जैसे नामों से जाना जाने लगा। उसका बचपन जंगल में इंका बस्ती में बीता। बाद में, उसने अपने चाचा का हाथ थामकर इस पेशे को अपनाया। उसके पास इतिहास और जीव विज्ञान की डिग्री थी। बाद में, उसने बड़ी मेहनत से अंग्रेज़ी सीखी; लेकिन फिर भी वह हमसे अंग्रेज़ी सीखने के लिए उत्सुक था। जहाँ एक ओर वह पर्यटन जगत से घिरा हुआ था, वहीं दूसरी ओर उसकी यात्रा भी जारी थी। वह एक कट्टर इंका बनना चाहता था।

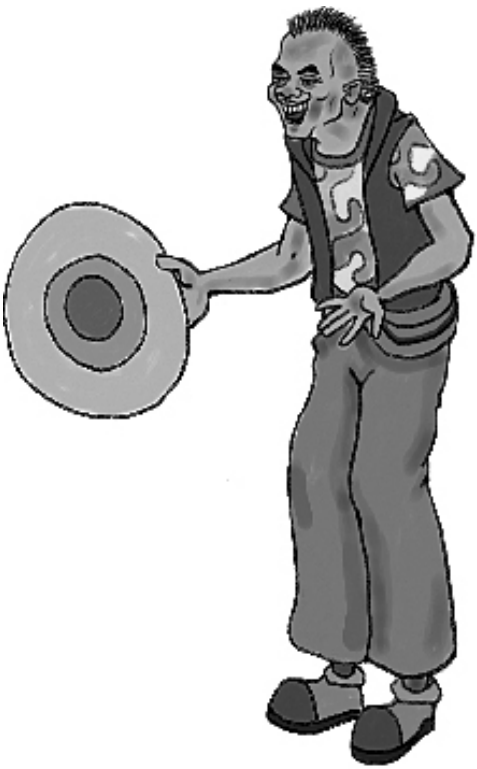

मुझे उसकी टोपी पर लगे उस रंगीन बैज को लेकर बहुत जिज्ञासा थी। आखिरकार, कुछ इमारतों पर वही झंडा देखकर मेरा मन भर नहीं रहा था। मैंने उसे छेड़ा। मैंने वह रंगीन धारीदार झंडा 'गे प्राइड परेड' में देखा था... 'हम समलैंगिक, विषमलिंगी, उभयलिंगी, स्त्री, ट्रांसजेंडर हैं... हमारा यौन व्यवहार भी स्वाभाविक है। मानव जाति इन विविध यौन क्रियाओं से बना सात रंगों का इंद्रधनुष है। इसीलिए यह सात रंगों का झंडा है'... कूलियो की टोपी पर वही बैज देखकर मुझे कुछ और ही शक हुआ। जैसे ही मैंने उसे छेड़ा, कूलियो उत्साहित हो गया। उसने कहा, 'यह इंकाओं का झंडा है और इसका अपमान नहीं किया जा सकता!' मैंने माफी मांगी और उसे समझाया कि मेरा सवाल सिर्फ जिज्ञासावश था। उसका दिल पिघल गया। उन्होंने आगे बताया, "इंद्रधनुष इंका लोगों का देवता है और इसके रंग इस झंडे पर अंकित हैं। जब इस झंडे को चुना

गया, तो बहुत उपहास और उपहास हुआ क्योंकि इंका लोगों ने समलैंगिक आंदोलन का झंडा चुना था। लेकिन महान इंका लोगों ने अंततः यह साबित कर दिया कि इंद्रधनुष अनादि काल से अस्तित्व में है और 'समलैंगिक' आंदोलन नया है। इसलिए इन रंगों पर इंका लोगों का अधिकार 'समलैंगिक' से कहीं अधिक है। यही कारण है कि यह झंडा स्थायी हो गया।" कूलियो शुद्ध इंका वंश का था (एक तरह से) और उसके मन में इंका लोगों के प्रति अथाह घृणा थी। उसका वर्तमान क्रोध उसी घृणा की एक झलक मात्र था।

बाद में, उससे टकराव बढ़ता गया और उसके अलग-अलग पहलू सामने आने लगे। वह सब कुछ कर सकता था। जंगल में पले-बढ़े होने के कारण, वह पेड़ों, लताओं, जानवरों और पक्षियों से दोस्ती रखता था। वह शिकार कर सकता था। वह एक पेड़ से कांटा तोड़ता, उस पर दूसरे पेड़ का जहरीला रस लगाता और बांस की नली से उस कांटे को ज़ोर से फूंकता। अगर उसके सामने कोई जानवर कांटे से टकराता, तो वह तुरंत बेहोश हो जाता। वह ये सब करता था। बाद में, वह ताली और कैजोन की थाप पर बेतुके क्रियोल नृत्य करता, चारंगो के तारों पर गंभीर धुनें बजाता और यहां तक कि तारासप्तकट में उड़ते हुए गीत भी गाता। कूलियो के बारे में मैं कितनी प्रतिभाओं का ज़िक्र करूँ... फोटोग्राफी, ताश का जादू, प्लेट हैट, गोताखोरी, ड्राइविंग, खाना बनाना, कुली... कितनी और क्या-क्या!

यहां के पत्तों और लोगों का प्रकाश अद्वितीय है। ये लोग मादक कोकीन के आविष्कारक हैं। इसी कोकीन से दर्द निवारक मॉर्फिन का निर्माण हुआ। इसलिए, इन्हें मॉर्फिन का जनक भी कहा जाता है। यह मॉर्फिन कैंसर रोगियों को दर्द से राहत देती है। इसके विकल्प के रूप में कई दर्द निवारक दवाएं आईं और चली गईं, लेकिन यह वही है। ये लोग कुनैन के भी आविष्कारक हैं। यह मलेरिया की सदियों पुरानी रामबाण दवा है। इसका उपयोग आज भी होता है; लेकिन रामबाण के रूप में नहीं, बल्कि दुश्मन पर तीर के रूप में! स्कोलिन का उपहार भी यहीं के क्यूरेर वृक्ष से आता है। मैं प्रतिदिन स्कोलिन का उपयोग करता हूं। इसका उपयोग सर्जरी के दौरान मांसपेशियों को शिथिल करने के लिए किया जाता है। इसके बिना कई ऑपरेशन असंभव हो जाते। इसी क्यूरेर के रस को कूलियो ने कांटे पर लगाया था। इसी कारण कूलियो एक क्रूर व्यक्ति था। ऐसी ज्ञानवान संस्कृति से ज्ञान मुरझा गया है और बुढ़ापा रह गया है। फिर इस संस्कृति के अग्रदूतों के माथे पर बची हुई कठिनाइयां।

एक समय ऐसा आया जब हमें अपना सामान नाव पर लादना पड़ा। चार दिन पहले जब हम यहाँ पहुँचे थे, तब नदी पूरे उफान पर थी और ज़ोरदार बारिश हो रही थी; लेकिन अब बारिश रुक गई थी और नदी का पानी कम हो गया था। इसलिए सामान को नाव तक ले जाना एक बड़ी चुनौती थी। कूलियो ने अपनी कमीज़ उतारकर कमर पर बाँध ली। उसने अपने कंधों पर एक मोटी चादर डाली और दो बड़े-बड़े थैले अपने कंधे पर रख लिए। वे हवाई जहाज़ के थैले काफ़ी बड़े थे। उन थैलों के सामने कूलियो अब डरपोक सा लग रहा था। लेकिन नाव की ओर बढ़ने से पहले उसने उंगली से मेरी ओर इशारा किया और मुझे एक और थैला अपने सिर पर रखने को कहा। इस बोझ को उठाते हुए हम आधा किलोमीटर चले, नदी किनारे कीचड़ और पत्थरों को रौंदते हुए और फिर वहाँ से काँटों के बीच से। उसने तेज़ी से कदम बढ़ाते हुए दूरी तय की। उसने थैला नाव में छोड़

दिया और वापस आ गया। एक बार फिर उसने हमारे थैलों का भार उठाया और उतनी ही मेहनत से चला गया। अब तक हम भी अपनी क्षमता के अनुसार ज़्यादा से ज़्यादा सामान लेकर रेगिस्तान पार कर रहे थे। भूमध्य रेखा की झुलसा देने वाली गर्मी और घने जंगल के कारण पसीना बहाते और हांफते हुए हम नाव तक पहुंचे। कूलियो अब नया सामान लाने वापस गया। उसे खाना पकाने का सामान खरीदना था। उसने बचे हुए आलू, आटा, नमक और बर्तन इकट्ठा किए, उन्हें बोरियों में भरा और नाव की ओर वापस चल पड़ा। अब नाव चल पड़ी।

अमेज़न नदी का पानी धीरे-धीरे और कभी-कभी उफान पर बह रहा था। हम थक चुके थे, इसलिए नाव में लेटने में भी मुश्किल हो रही थी। इसी बीच, बांसुरी की अलौकिक धुनें वातावरण में गूंज उठीं और हमें मंत्रमुग्ध कर दिया। ध्यान से देखने पर कुलियो नाव के आखिरी छोर पर लेटा बैठा था। वह पानी में पैर डालकर खुशी-खुशी बांसुरी बजा रहा था। वह दर्द, झुंझलाहट, असुविधा, ऊब, गर्मी और पसीने जैसी कई भावनाओं को व्यक्त करते हुए अपनी धुनें बजा रहा था। कुलियो, जो हमसे कहीं ज्यादा थका हुआ था, उसने अपनी बांसुरी होठों से लगा रखी थी। ऐसा लग रहा था मानो वह उसमें अपनी जान फूंक रहा हो। अपने हाथों की कोमल हरकतों से वह अपनी थकी हुई सांसों की मासूम धुन बुन रहा था।

आज कुलियो के लिए एक खास दिन था। आज वो हमें अपनी पत्नी से मिलवाने वाले थे। लेकिन पत्नी को लेकर उनके और हमारे विचार अलग-अलग थे। उनकी कई पत्नियां थीं, अलग-अलग भूमिकाओं में, जैसे पत्नी, सहेली, सेक्रेटरी और पत्नी। जिनसे मैं आज मिला, वो वन विभाग में काम करती थीं। जंगल के अंदरूनी हिस्से में एक ऑक्स बो झील थी। उनकी ड्यूटी वहीं लगी हुई थी। फिर, जंगल में काफी दूर तक सफर करने के बाद, हम वहाँ पहुँचे। फिर मेरी मुलाकात मेरी पत्नी से हुई। फिर हमारा एक-दूसरे से परिचय हुआ, इत्यादि। फिर कुलियो ने उनसे औपचारिक रूप से मुलाकात की। (मुझसे मत पूछिए कि औपचारिकताएँ क्या थीं!) उन्हें सिर्फ स्पैनिश और क्वेशुआ आती थी। कुलियो हमें नाव में बिठाकर पक्षी देखने ले गए और झील के किनारे, हम दोनों बिना बोले बातें करने लगे। हालाँकि हम एक-दूसरे की भाषा बिल्कुल नहीं जानते थे, फिर भी हमने एक-दूसरे के बारे में इतना कुछ जान लिया कि मैं हैरान रह गया। वो जंगल के अंदरूनी हिस्से में कहीं रहती हैं... वो सुबह से शाम तक ड्यूटी पर रहती हैं... उनके तीन बच्चे और दो पति हैं, जिनमें कुलियो भी शामिल हैं... दोनों शराब पीते हैं, लेकिन कुलियो थोड़ा कम पीते हैं। वह सबसे कम पीती है... उसकी सबसे छोटी बेटी को लगातार सर्दी-जुकाम रहता है और अगर मैं उसे दवा दे दूं तो उसे अच्छा लगेगा... दिन भर में 60-70 लोग आते हैं, लेकिन हम भारत से आने वाले पहले पर्यटक हैं... इससे पहले उसने भारतीय लोगों को सिर्फ बॉलीवुड फिल्मों में ही देखा था... वह घर से खाना लाती है... इसके अलावा, वह रास्ते में फल और कंद खरीद लेती है... उसने पास की झोपड़ी में कुछ गिनी पिग भी पाल रखे थे... आज कूलियो के स्वागत के लिए भुने हुए गिनी पिग बनाने की स्वादिष्ट योजना थी।

वास्को दा गामा हमारे पास आए, लेकिन लेका ने उन मलयाली लोगों से किस तरह बात की, यह सवाल मुझे पांचवीं कक्षा से ही परेशान कर रहा है। लेकिन इससे मुझे यह पता चला कि खान-पान के संकेत और हाव-भाव कितने जानकारीपूर्ण हो सकते हैं।

कुछ ही देर में कूलियो आ गया। उसने खाना बनाने में भी उसकी बहुत मदद की। फिर हमारा खाना आया। खाने में उबले आलू का पाउडर, उबले आलू का केक और उबले आलू थे। खाना बहुत फीका था। हमने अनिच्छा से अपने साथ लाया हुआ थोड़ा सा अचार फीके आलू में मिलाया और खाने को थोड़ा मसालेदार समझा। आलू, साबूदाना और मिर्च इस जगह की मूल सब्जियां हैं। पुर्तगाली इन सामग्रियों को भारत लाए थे।

तभी कूलियो की थाली आ गई। गिनी पिग लकड़ी की थाली पर लेटा हुआ था। उसके हाथ-पैर आलस से फैले हुए थे। वह इस तरह फैला हुआ था कि उसकी पूंछ, पंजे और दांत दिख रहे थे। उसका सीना और पेट फटा हुआ था और उसके अंदरूनी अंगों का चिपचिपा पदार्थ बाहर झाँक रहा था। कूलियो, जो इस तरह मांस खाता था, हमें जंगली लगता था, और हम, जो इतना मसालेदार खाना खाते थे, उसे बर्बर लगते थे। कुछ ऐसा ही पहले भी हो चुका था। स्पेनिश लोग सोचते थे कि गोरे श्रेष्ठ हैं और बाकी सब नीच हैं। आज कूलियो को ठीक इसका उल्टा महसूस हो रहा था। वह तनाव भरी आवाज़ में बोल रहा था। एक विशाल पत्थर की मूर्ति के सामने खड़े होकर, वह मानो युगों की कहानियाँ सुना रहा हो। उसने विस्तार से बताया कि कैसे स्पेनिश लोगों ने आक्रमण किया और कैसे उन्होंने मूल निवासियों का सफाया किया। बाद में, यह युद्ध हर जगह फैल गया। ब्रोशर और दीवार पर लिखी जानकारी अलग है, और यह कहना बिल्कुल अलग बात है।

हमने पढ़ा था कि स्पेनियों के पास एक ऐसा वाहन था जिसे इन दक्षिण अमेरिकियों ने पहले कभी नहीं देखा था, एक घोड़ा! स्थानीय लोग घोड़े और उस पर सवार व्यक्ति को एक ही जानवर समझते थे। वे इससे डरते थे। उन्होंने ऐसा जानवर पहले कभी नहीं देखा था। 'ये सब मिथक हैं,' उसने कहा। 'ये सब इंकाओं को बदनाम करने के लिए गढ़े गए हैं। क्या सामान्य ज्ञान यह समझने के लिए काफी है कि घोड़े और मनुष्य दो अलग-अलग जानवर हैं? क्या इंकाओं के पास यह नहीं था?' एक पल में वह गुस्से से कांपने लगा।

एक जगह मानव बलि के लिए एक वेदी थी। इसके अनुसार, इंका लोग नरभक्षी नहीं थे। विदेशी स्पेनियों ने इंका लोगों के बारे में अपनी सुविधानुसार गलत धारणाएँ फैलाईं। स्पेनियों के पास लोहे का उपयोग करने की तकनीक थी। इंका लोगों ने लोहे की खोज तक नहीं की थी। वे अपना समय सोने और चांदी में व्यतीत कर रहे थे। बचपन से ही वे एक-दूसरे को चांदी की थालियों में, सोने की थालियों में भुट्टे के छिलके खिलाते थे। वे सचमुच एक-दूसरे को भोजन कराते थे। क्योंकि जो कुछ हो रहा था वह पूरे कबीले से संबंधित था।

कुलियो के अनुसार, “उन्होंने समृद्ध संस्कृति का लाभ उठाया। स्वामित्व की अवधारणा स्पेनिश थी। चूंकि निजी संपत्ति का कोई विचार नहीं था, इसलिए सब कुछ सबका था। तो यह भावना अच्छी थी, लालची होना भला भला क्या? भोजन कबीले में सबके लिए था। इसलिए जो शिकार नहीं कर सकते थे, वे भी हिस्सा ले सकते थे। जो व्यक्ति शिकारी बन जाता था, वह जीवन से हमेशा के लिए अलग हो जाता था, यह कोई मजाक नहीं है। कितनी महान व्यवस्था है! इसे ही सामाजिक सुरक्षा कहते हैं।” लेकिन उन्हें यह नहीं पता था कि यह तरीका आज के समय में बेकार है।

क्योंकि सब कुछ सबका था, इसलिए किसी भी चीज़ का ज़्यादा रिकॉर्ड रखने की ज़रूरत नहीं थी, और इस जटिलता से कोई और परेशानी भी नहीं पैदा हुई। इन इंका लोगों ने लेखन का आविष्कार बिल्कुल नहीं किया था, या वे ऐसा करने में सक्षम ही नहीं थे। वे रस्सियों में अलग-अलग जगहों पर गांठें बांधकर कुछ गुप्त जानकारी रखते थे; लेकिन आज के समय में, वे गांठें असल में सिर्फ़ गुप्त गूढ़ बातें हैं। आज कोई भी उन गांठों का अर्थ नहीं समझ सकता। इंका लोगों को पहिये का आविष्कार करने की भी ज़रूरत नहीं थी। कुम्हार के पास पहिया तो था, लेकिन पहिए वाली गाड़ी नहीं थी। अगर गाड़ी खींचने के लिए घोड़े ही नहीं थे, तो गाड़ी बनाने का क्या फ़ायदा? इन जानवरों में सबसे बड़ा लामा था। वह मुश्किल से पचास किलो का भार उठा पाता था। यानी, एक बड़ा आदमी भी उसकी पीठ पर नहीं बैठ सकता था।

स्पेनिश लोग आए, उन्होंने देखा और जीत हासिल कर ली। स्पेनिश लोगों ने इसलिए जीत हासिल की क्योंकि वे तकनीकी रूप से उन्नत थे। पाल और तोपों, पहियों और उन्नत तकनीक की मदद से उन्होंने दक्षिण अमेरिका पर विजय प्राप्त की। उन्होंने वहाँ की जंगली जनजातियों को मानवीय रूप दिया। उन्होंने उन्हें उनकी भाषा दी, उन्हें लिपि दी। मूल भाषाएँ लुप्त हो गईं। इंका और कुलियो की क्वेशुआ भाषा अब लगभग बची हुई है।

स्पेनियों ने अपना धर्म दिया। लेकिन कुलियो कहते हैं, "जब कैथोलिकों को श्रेष्ठ कहा गया, तो बाकी सभी हीन लोग बाढ़ की तरह आए। जो लोग धरती, जल, प्रकाश, वायु और आकाश की पूजा करते थे, वे बर्बर बन गए, और आकाश में तथाकथित पिता की संतानें उन्नत हुईं! धन, जुर्माना और भेदभाव के बल पर धर्म परिवर्तन कराया गया। स्पेनिश टोरा के अनुसार, दुनिया के सभी काले और पीले लोगों को सुधारने का कठिन और जटिल कार्य गोरों के मजबूत कंधों पर सौंपा गया था।" कुलियो इस टोरा की धज्जियां उड़ा रहे थे, वे जनता पर अत्याचार कर रहे थे। कुलियो की बातों में सच्चाई थी। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उन्होंने पोप की ओर थूका। लेकिन पोप के ईसा मसीह और पेरू के ईसा मसीह में भी अंतर है। लीमा के चर्च में 'अंतिम भोज' के चित्र में, पेरू के ईसा मसीह के सामने गिनी पिग के मांस की भेंट है। पृष्ठभूमि में, भेड़ों का झुंड नहीं, बल्कि लामाओं का झुंड है।

स्पेनियों ने व्यापार बढ़ाया, अस्पताल और स्कूल खोले, संस्कृति का प्रसार किया और राष्ट्र की अवधारणा को जन्म दिया। नस्लीय संकरण हुआ। सदियाँ बीत गईं। अब यह पहचानना भी मुश्किल हो गया कि कौन मूल था और कौन गद्दार। मूल संस्कृति एक कब्र बन गई। उन कब्रों पर नए महल, नए मंदिर और नए राजमहल बस गए। यही कूलियो ने हमें दिखाया। यह सब कूलियो के दिल में बसा हुआ था।

मूल संस्कृति पूरी तरह से नष्ट हो गई। अब बहुत कम इंका बचे हैं जो बता सकें कि इंका कौन थे। कोई लिपि नहीं थी। बेशक, स्पेनिश लोगों द्वारा बनाए गए अभिलेख मौजूद हैं। ये अभिलेख विजेताओं द्वारा विजेताओं के बारे में बनाए गए हैं। इन्हें एक ही जाति के प्रति पूर्वाग्रह के साथ लिखा गया था। क्योंकि इतिहास केवल विजेताओं का है। संस्कृति केवल विजेताओं की है। यहाँ तक कि शहादत भी केवल विजेताओं की है। आज, खुदाई में मिले बर्तनों, मूर्तियों, ममी, कब्रों और सोने-चांदी की वस्तुओं से क्या जाना जा सकता है? इसके अलावा, क्या उन्हें खोजने आए

सभी लोग थोड़े-बहुत ही थे? वास्तव में, वे थोड़े-बहुत ही थे। काल्पनिक स्वर्णिम लंका, एल डोराडो की खोज में निकले शौकिया और अनुभवहीन लोग कहीं अधिक थे। सभी को सोने का लालच था। यहाँ तक कि भेड़ की खोपड़ी पर जड़ा सोना भी वर्जित नहीं था।

हमने इंकाओं के खालसा साम्राज्य में खूब यात्रा की। हमने कुलियों की बातें भी खूब सुनीं। एक जीवंत संस्कृति समय के साथ तालमेल न बिठा पाने के कारण पतन की ओर अग्रसर हुई। समय की गोद में उस संस्कृति के केवल अवशेष ही शेष रह गए।

सामने विशाल चट्टानों की एक बड़ी दीवार खड़ी थी। पत्थर पर पत्थर से बनी एक विशाल दीवार। क्यों? मुझे नहीं पता। किसने? मुझे नहीं पता। कैसे? मुझे नहीं पता। माचू पिचू की चोटी पर कुछ घर। पत्थर की कुछ त्रिभुजाकार-वर्गाकार दीवारें। यह किसका राज्य था? मुझे नहीं पता। यह वीरान क्यों हो गया? मुझे नहीं पता। नाज़का पठार पर उकेरी गई विशाल आकृतियाँ। मनुष्य, बंदर, गिद्ध, पक्षी... आकृतियाँ ही आकृतियाँ। कुछ तो बस आकृतियाँ थीं। मीलों तक खींची गई सीधी रेखाएँ। क्यों? मुझे नहीं पता। कुछ कहते हैं कि ये परग्रही अंतरिक्ष यानों के लिए रनवे हैं; कुछ कहते हैं कि यह उनका पंचांग है; कुछ कहते हैं कि ये जल के मार्ग हैं; कुछ कहते हैं कि ये आरोहण की दिशाएँ हैं। कुछ-कुछ, कुछ-कुछ।

वह अपने प्रयासों से इन सब बातों को समझने की कोशिश कर रहा है। कोई अपना जीवन इसमें लगा रहा है। लेकिन यह ब्रह्मांड कितना विशाल है? उसके सिर के आकार जितना। और यह सब। हर जगह इस निरंतर दाई की उपस्थिति। हर वो चीज़ जो उसकी जिज्ञासा जगाती है। लेकिन उसकी जिज्ञासा को शांत करने के लिए कुछ भी नहीं।

कुलियो इंका संस्कृति के रथ के पहिये को उखाड़ने की कोशिश कर रहा था, जो समय के गर्भ में जकड़ा हुआ था, बिना लोहे के, बिना लिखे, बिना घोड़े या पहिए के। एक ऐसे समाज में जहाँ यह माना जाता था कि जो कुछ भी अच्छा, महान, उन्नत और शानदार है, वह स्पेनिश है, वह इस तरह का चिह्न लगाकर काम कर रहा था: 'जो कुछ भी अच्छा, महान, उन्नत और शानदार है, वह इंका है'। उसे अपनी जाति के पतन का एक बना-बनाया दुश्मन मिल गया था - स्पेनिश उपनिवेशवाद का काला इतिहास! उनकी भाषा, संस्कृति, धर्म... सब कुछ। वह इन सबको जड़ से उखाड़ फेंकना चाहता था। वह मूल संस्कृति को वापस लाना चाहता था। यहीं पुर्तगालियों ने गोवा पर कब्जा किया, लगभग उसी समय जब स्पेनिश लोगों ने पेरू में कदम रखा। यहीं मराठा साम्राज्य का पतन हुआ, लगभग उसी समय जब स्पेनिश लोगों ने पेरू छोड़ा। आज पेरू एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक देश है। वहाँ 80 प्रतिशत नागरिक कैथोलिक हैं, 80 प्रतिशत लोग स्पेनिश बोलते हैं, 80 प्रतिशत लोग मिश्रित नस्ल के हैं। फिर भी, कुलियो अपने रुख पर अड़ा हुआ है।

अपनी अंतिम हार से पहले अंतिम इंका राजा के कहे आखिरी शब्द थे, 'तुम इंतज़ार करो। मैं लौटूँगा।' कूलियो उन्हें सच करना चाहता था। लेकिन उसे पता नहीं था कि कैसे। फिलहाल, उसका एकमात्र मकसद स्पेनिश विरासत से नफरत करना था। वह जिन पर्यटकों से मिलता, उन्हें यही बहाना सुनाता। इंकाओं के बारे में बात करते हुए, वह दूसरों के बारे में जो कह रहा था, वह भयावह था। वह अन्यायपूर्ण था, वह खुद को पीड़ित मानता था। उसकी भाषा न्याय की बात करती थी; लेकिन उसका रवैया एकतरफा, नफरत से भरा, क्रूर और ईर्ष्या से लबरेज था। वह

पीढ़ियों के अन्याय का बदला अभी, यहीं, इसी क्षण लेना चाहता था। उसकी गूढ़ भावना यह थी कि स्पेनिश विरासत के सभी निशान मिटा दिए जाने चाहिए। पेरू मूल पेरूवासियों का है, यही उसका सीधा संदेश था। यह कैसे संभव है? आज की पेरू की भाषा, धर्म, संस्कृति, सब कुछ हजारों वर्षों में जमा हुआ एक 'गहरा मिश्रण' है। दुनिया इंकाओं को स्पेनिश लोगों की वजह से जानती है, लेकिन इंका भी दुनिया को स्पेनिश लोगों की वजह से जानते हैं। आज न तो कूलियो का क्रियोल नृत्य शुद्ध पेरूवियन है, न ही उनका प्रिय ज़म्फ़ोन। यहाँ तक कि उनका अपना नाम भी बिगड़कर जूलियस... जूलियो... कूलियो... हो गया है। अगर हम इसे छानकर केवल इंका संस्कृति को ही रखने की कोशिश करें, तो कुछ भी नहीं बचेगा।

इसके बाद, कूलियो के साथ गैलापागोस द्वीप समूह की यात्रा अविस्मरणीय बन गई। चार्ल्स डार्विन बीगल जहाज से यहाँ आए थे। इस द्वीपसमूह की अद्भुत जैव विविधता को देखकर, उनके विकासवाद के सिद्धांत की पुष्टि हो गई। डार्विन और उनके सिद्धांत की तरह, ये द्वीप भी अब प्रसिद्ध हैं। ये दुनिया भर के वैज्ञानिकों के लिए तीर्थस्थल हैं।

कूलियो ने विकास के पूरे सिद्धांत को कुछ ही शब्दों में समझाया – “सभी जीवित प्राणी आदिम जीवों से धीरे-धीरे विकसित हुए हैं। इस विकास के लिए कई कारक जिम्मेदार हैं। आज जीवित प्राणियों की विविधता विकास का ही एक हिस्सा है, और मनुष्य भी एक प्राणी है और इसी विकास का परिणाम है। पृथ्वी की आयु, जो कुछ मिलियन वर्ष है, उस दौरान पृथ्वी की भूपर्पटी और वायुमंडल में हुए परिवर्तन, आज प्रयोगशाला में उत्पादित किए जा सकने वाले अमीनो अम्ल, विभिन्न स्थानों पर पाए जाने वाले जीवाश्म, और वे प्रजातियाँ जो निरंतर बनती और लुप्त होती रहती हैं क्योंकि वे परिवर्तनों के अनुकूल नहीं हो पातीं, ये सभी विकास के पक्ष में प्रमाण हैं।” लेकिन उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि किसी को भी इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि मनुष्य, या कोई विशेष प्रजाति, इस विकास में सबसे ऊपर है। केंचुआ, केंचुए के स्थान पर रहने वाला सबसे विकसित प्राणी है, और गोडफिश गहरे पानी में रहने वाली सबसे विकसित प्राणी है। मनुष्य उनका स्थान नहीं ले सकता।

कूलियो की जीव विज्ञान की समझ आश्चर्यजनक थी।

'इन डार्विनवादी सिद्धांतों ने ईश्वर को पदच्युत कर दिया...'

'यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्यों की केवल एक ही अंतिम जनजाति है...'

यह सिद्ध हो चुका है कि न केवल मनुष्य बल्कि सभी जीवित प्राणियों का एक ही अंतिम समुदाय होता है...

‘योग्यतम की उत्तरजीविता’ की अवधारणा एक मिथक है...’

"सहयोग का सिद्धांत अस्तित्व और विकास के लिए उतना ही उपयोगी है जितना कि प्रतिस्पर्धा..."

‘जुनून के मार्ग पर कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता...’

"विकास के पथ पर, उसी पथ को विपरीत दिशा में नहीं अपनाया जा सकता..."

"इस बात की कोई उम्मीद नहीं है कि वह अपने मूल स्थान पर वापस लौटेगी..."

"एक बंदर इंसान बन गया, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि एक बंदर इंसान नहीं बन

सकता..."

कूलियो यह सब समझता है, लेकिन यह तथ्य कि यह इतिहास पर भी लागू होता है, उसे परेशान नहीं करता। इतिहास का विकास होता रहता है। इतिहास का पहिया पीछे नहीं घूम सकता। यद्यपि इतिहास में यह संभव था, लेकिन शुद्ध कुलों, वंशों, रक्त आदि की अवधारणाएँ वर्तमान में हास्यास्पद हैं। इतिहास में पूर्वजों के पापों के लिए वर्तमान वंशजों को जिम्मेदार ठहराकर भविष्य को कैसे आकार दिया जा सकता है? इंकाओं के लिए गुहार लगाते हुए कूलियो मौजूदा स्थिति के साथ तालमेल नहीं बिठा सका। वह यह तय नहीं कर पा रहा था कि इंकाओं की विरासत को अपनाए या गैलापागोस की।

इसीलिए जब मैं अपने आस-पास ऐसे लोगों को देखता हूँ जिन्होंने वर्तमान और भविष्य को पीछे छोड़कर इतिहास बदलने का बीड़ा उठाया है, तो मुझे आज भी कूलियो की याद आती है। उन्होंने कुछ कठिन प्रश्नों के सरल उत्तरों को मेरे लिए फिर से कठिन बना दिया। इसीलिए मैं उन्हें हमेशा याद रखूंगा।

***** समाप्त *****

sjeet

समकालीन प्रकाशनाची इतर ललित पुस्तकं

ज्येष्ठ लेखक रत्नाकर मतकरी यांची तीन ललित पुस्तकं

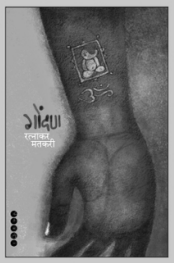

गोंदण
₹२५०

शांततेचा आवाज
₹२२५

सोनेरी सावल्या
₹२००

पुन्हा एकदा
सानिया
₹१८०

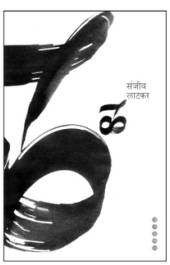

ळ
संजीव लाटकर
₹२००

खिडक्या अर्ध्या उघड्या
गणेश मतकरी
₹१५०

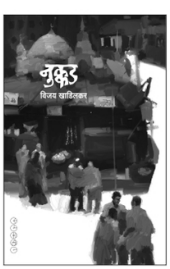

नुक्कड
विजय खाडिलकर
₹१५०

समकालीन प्रकाशन

संपर्क : ९९२२४३३६०६